

लो० । २॥ क्रलोकर्यं त्रीलोकर्यं १३॥
क्रम कर्म १३॥ कुरुकरणे कुरुजीकरणे १४॥
प्राण प्राणः २०॥ प्रवर्तते प्रवर्तते २१॥
तंदृ तंदृ २३॥ (पहलीलीटीने) जीजीलीटी २४॥
समजनी २४॥ शेतद् पश्य २४॥
द्रव्यपरूप द्रव्यपरूप रूपी २७॥
(उद्धिष्ठांथी) (उद्धिष्ठांथी) अहंकार अने २८॥

अहंकारपांथी २७॥ चेतन्यपांथी—चेतन्यपांथी अहंकार अने २९॥
अहंकारपांथी २८॥ पूर्व २८॥ चेतन्य २८॥ दुःखा २९॥
पूर्व २८॥ चेतन्य २८॥ दुःखा २९॥ बद्धयते ३१॥ विद्यते ३२॥
बद्धयते ३१॥ विद्यते ३२॥ जीवोना ३३॥



प्रस्तावना

आ ग्रंथना कर्ता श्रीमान् हरिभद्रसुरि जेवा धुरंधर आचार्य होयाथी आ ग्रंथनी उत्तमता विषे काँइ विशेष कहेयानु होय नहि. श्री हरिभद्रसुरिप आ अंथमां प्रथम कवता अने श्रोताओनी योग्यता दशान्डिया बाट तथा आ जगत्तु द्वरूप, आत्मानु स्वरूप अने कर्मतु द्वरूप कया कया दर्शनयाळा कया प्रकारे माने क्ले ते सर्वे मरतव्य दशान्डिया बाट जेन दर्शन ए अनेते द्वरूप कह रीते माने छे ते दर्शनव्यया पूर्वक अन्यदर्शनकारोनु मन्तव्य केवी रीते शुक्लिचिकल छे, अने जेनदर्शन नु मन्तव्य कह रीते यथार्थ क्ले ते पण युक्ति पूर्वक दशाविलुँ छे. आ ग्रंथना भाषत्तरतां प्रयास अनेक देशमां विहार करयाथी पोताना चारित्रयल वडे प्रसिद्ध थयेना शान्तस्वभावी मुनिमहाराज श्रीमद्हंसविजयजी महाराजनी के ज्ञेयो ज्ञानाचार्य श्रीमद् विजयानंद सुरीश्वर उफे, श्रीमद् आत्मारामजी महाराजना मुख्य शिष्य श्री लक्ष्मीविजयजी महाराजना शिष्य छे, तेभोनी प्रेरणाथी थयेलो क्ले...।

आ ग्रंथने अनुसारे जीवा जतां भाषान्तर बहुज दुङ्का अर्थधालु लेखाय ते बास्तविकज छे, कारणके मारी मरत अलए होया विग्रेना कारणशी आटलो अर्थज लखी शकायो क्ले. न्यायमां मारो प्रवेश नहि होयाथी तेवे स्थाने जे जे पंडित अथवा शास्त्रीओने पूछी समझीने लखेल छे ते ते पंडित-शास्त्रीओनो आ भाषान्तर कर्ता उपकार माने छे. पृष्ठीने निर्णय करेला स्थानमां तेमज थीजे स्थाने छब्बस्थाने लहने उपयोग शृण्यता विग्रेथी थयेली भूल माटे हु मिथ्याइकत दउ हु अने सुझ पुरुषो ते सुधारी थांचव्यापी.

लीः चंद्रलाल नानचंद म० सिनोर, हाल म० अमदाबाद

नयायांभोनिपित्तेनाचार्यं श्रीमद्विजयानन्दसूरी भगवत्पित्तिर्थ श्रीपद हंसविजयेन्द्र्यो नमोनमः

श्री लोकतत्त्वनिर्णय ग्रन्थः

(भाषान्तर कर्ता पं० चंद्रशाल नानाचंद्र०)

जिनेन्द्रहन्दं जिनयासनं च, श्रीरकितं हंसपूर्णि प्रणव्य
व्याख्यां नुत्तस्वस्य सनिर्णयस्य, वक्षेऽनन्दं एर्जरया गिरा वै ॥ १ ॥
प्रणिपत्येकमनेकं, केवलहन्दं जिनोत्तमं भवत्यया । अन्यजनवोधनार्थं, वत्तत्वनिगमं प्रवद्यतामि ॥ २ ॥ आर्या ॥

अर्थः—श्री जिनेन्द्र समान शुद्ध आत्मसवरुपी वीजुं कोइ नहि होवाथी एक, अनन्त ज्ञान अनेत दर्शन अने क-
नेत चारिचादि अनेक गुणयुक्त होवाथी अनेक, केवलज्ञानयुक्त होवाथी केवलस्वरूप पवा सर्वं जिन
एटले सामान्य केवलीओमां श्री जिनेन्द्र-तीर्थकर भगवानने भक्तिपूर्वक नमस्कार करी भव्य जीवोने प्रतिबोध
करवा माटे हुं (हरिभद्र सुरि) लोकतत्वनिगम पृष्ठे लोक स्वरूपनो निर्णय कहीय कहीय ॥ १ ॥

भवयाऽभवन्यविचारो, न हि शुचकोऽनुश्रुत्वात्तानाम् । कामं तथापि पूर्वं, परीक्षितव्या दुर्ब्यः परिषद् ॥२॥

निः

अर्थः—उपकार करवाने तत्पर थेला यहात्मा औने आ भव्य (उपदेश योग्य) हैं, अने आ अभव्य हैं, एवो विचार करवो योग्य नशी तोपण डुड़िमानोए प्रथम सभानी परीक्षा तो सारी रीते करवी जोइए.

प्रथम गाथामाँ “भव्यजन बोधनार्थी” ए वाक्य वहे आचार्य भव्य जीवने प्रतिवोद्य करवाऊं कहुं, ते वाक्तव्य कोइ रंका करे के जगतमाँ उपकार करनार महात्माओ तो दरेक जीवने उपदेश आपी प्रतिवोद्य करे तो केवल भव्य जीवनेज प्रतिवोद्य करवाऊं कैम कहाँ ? ए चंकाना समाधानस्थे आचार्य महाराज आ गाथाना उचराखवडे कहे हैं के ए वान जोके ठीक हैं तोपण डुड़िमानोए (आ जीवने उपदेश सफल थेरो के निषफळ ! तेनो अनुपानथी सारी रीते निर्णय करवानी तीक्षण डुड़िद्वाला महात्माओए) प्रथम सभानी एटले उपदेश आपवा योग्य जीवोनी परीक्षा तो सारी रीते करवी जोइए. नहिंतर जे इक्ष जे जमीनमाँ उत्याथी फल न आपी शके ते जमीनमाँ तेवा दृष्टने वारंवार जळ-सिंचन करतार माली जेम इक्कार्थीमाँ निपुण न कहेवाय तेम योग्यायोग्यस्वनो विभाग जाण्या विना उपदेश आपनार आचार्य पण डुड़िमान न गणाय, एटलुज नहिं पण मुखरीए वर्षीकृतुमाँ वर्षादीर्थी व्याकुल थता वानरने घर वांधवानो उपदेश आपतां वानरे खीजवाहने छुपरीनो ज मालो भागी नाखयो, तेम अयोग्यने उपदेश आपतां कोइवार आचार्यने पण गेरलाभ थाय. वक्ली मोक्षसंबंधि उपदेश सिंहना दृथनी पेठे अयोग्य श्रोतारूप अयोग्य (सुर्यं सिवायना वीजा) पात्रमाँ टकी न शके पण योग्य श्रोतारूप सुवर्णपात्रमाँ टकी शके माटे श्रोतानी योग्यता अवक्षय जोरी. ॥२॥

नोक्

?

वज्रमिवाऽस्मेवमनाः परिकथने चालनीव यो रितः । कलुषयति यथा महिषः, पूनकवदोषमादन्ते ॥३॥
जलसंश्वनवत् कथितं, वधिरस्येव हि निरर्थकं तस्य । पुरतोऽवस्थ च वृत्तं, तस्माद्यहणं तु भद्रस्य ॥४॥ युग्मं ॥

अर्थः—वज्रनी पेठे न मेदाय एवा हृदयवालो, उपदेश आपत्तं पण जे चाळणीनी पेठे साली होय, पाडानी माफक उपदेशने डोब्ली नारेह, अने गळणी माफक जे केवळ दोपतेज ग्रहण करे तेवा जीवने कहेलो उपदेश जळ व-लोचवानी माफक, बहेराने कहेली वातनी माफक अने अंधनी आगळ करेला नाटकनी माफक निरर्थक छे, ते कारणथी उपदेश सांभळवारां भद्र जीवडुं ग्रहण करेलुँ छे,

श्री नंदीसुत्रमां मार्गशील पापण, घट, चाळणी, परिपूर्णक, हंस, महिष, मेंढो, मच्छर, जळो, चिलाडी, जाहक, चिप, भेरी, अने आभीरी १४ जातिना श्रीता कहाँ छे, ते संक्षेपमां आ प्रमाणे—

१ मगना दाणा जेवडो नानो पाषाण ते मार्गशील पाषाण जेम पुळकरावर्त नामना महामेघथी अंदर जरा पण भी-जाय नर्हि पण उलटो वयु चलकाटवालो थवायी जाणे मेघसे हसतो होय तेम जे श्रीता महात्माना संकहो श्रेष्ठ उपदेश सांभळ्या छतां लेण पण असरवालो न याय परन्तु उलटो उपदेशकने ज जाणे अज्ञानी माननो होय एवो मगशील सरखो श्रीता अयोग्य छे,

२ कहे ते वरवत सर्व सांभळे पण पछी कंइ नहि ते छीद्रघट तुल्य, योङुं संभारे ते खंडघट तुल्य, शोङुं सांभळी तेटळुं संभारे ते कंठहीन घट तुल्य, अने सर्व उपदेश सांभळी सर्व संभारे ते संपूर्ण घट तुल्य श्रोता एमा छीद्रघट स-

रखो प्रथम श्रोता अबोध्य हैं, अने रेष तण श्रोता अनुकर्मे अधिकाधिक योग्यतावाला है।

३ चाळणीमां रहेलो आटो जेम हुर्त निकली पहे तेम उपदेश सांभङ्के के हुर्त विसारी है, अने थुं सांभङ्कुं ते स-

४ परिपूर्ण एटले गळणी अथवा चुपरीना मालाली जे धी गळाय ते गळणीमां अने मालामां कचरो शीलाइ हैं।

अने धी निकली जाय तेम उपदेशमांशी सार तजी केबल दोषने ज ग्रहण करे ते परिपूर्णक सरखो श्रोता अयोध्य जाणवो।
५ हंस जेम दृय पाणीने जुड़ करी दृथ पीए है, तेम जे श्रोता दोषग्राही न होय पण शुणग्राही ज होय ते हस-

६ पाढो जेम जलाशय डोली नाखे है तेम उपदेश डोली नाखनार श्रोता पाढा सरखो अयोध्य जाणवो। आ
श्रोता न पोते सांभङ्के के न वीजाने सांभङ्कवा है।

७ मेहो भूमिपर ठरेला एक खोबा जेटला जलने पण मलीन कर्या विना पीए है, तेम जे श्रोता एक पद माझ
पण विनयपूर्वक पूर्ते ते भेंडा सरखो श्रोता योग्य गणाय है।

८ उपदेशक आचार्यना जाति आदि दोष बोली तिरकार करनारो श्रोता मच्छर सरखो अयोध्य गणाय,
९ जलो जेम गरीरने दुःख दीया विना रुधिर पीए है तेम जे श्रोता आचार्यने दुषाव्या विना श्रुतशान ग्रहण
करे ते जलो सरखो श्रोता योग्य है।

१० विलाडी जेम पात्रमां रहेली क्षीर पण नीचे पाड़ीने खाय के तेम जे श्रोता साक्षात् गुरु पासे उपदेश न सांभळे परन्तु बीजा सांभळनार पासेथी सांभळी ले ते बिलाडी सरखो श्रोता अयोग्य जाणवो.

?? जेम जाहक नामन्तु जानवर थोड़ी थोड़ी क्षीर पीने पात्रनां पठखां पण आस्वाइ छे, तेम जे श्रोता प्रथम ग्रह-

ण करेला उपदेशने पण अति संभारीने बीजुं पूछे ते जाहक समान श्रोता योग्य हे.

? २ कोइ कणलीए पर्व दिवसे चार ब्राह्मणने एक गाय आपी तेओए एकक दिवस दूध दोहवानो बारो बाल्यो, त्यां जेनो बारो आवे ते एम जाणे के मारे तो आजे ज दोहवानो छे, ने काले बीनो दोहसो तेथी हु निर्थक यास चारों शा माट आई ? ए प्रमाण दरेके विचारवाशी गाय यास चारा विना भरण पासी, तेम श्रोताओमो पण शिथ्यो जाणे गुहनो विनय आजेला अझ्यासी सावुओ अने सांभळनारा तथा पूळनारा श्रावकादि जाणे के किंश्यो कररो अमे केटलीचार रहेवाना छीए ? ए प्रमाण यतां केवळ आचार्यनेज विठ्ठणा याय माटे एवा विम सरखवा श्रोता अयोग्य जाणवा.

१३ कृष्णना गुणशाहीपणानी परिक्षा करी प्रसुदित यथेला हेवे द मासे वगाडवा योग्य उपदेशनिवारक भेरी आपी, ते भेरिना रक्षक पासेथी अनेक वनवानोए यन आपी एकक कटको जळपां वसीं पीवा माटे लीयो, जेथी भेरी कंथा सरखो यह, तेम जे श्रोताओ सुन्नाथने वच्चे भूली जह बीजा पासेथी सुन्नार्थ ग्रहण करी करी संभारे ते भेरिनी कंथा करनार रक्षकयत अयोग्य श्रोता जाणवो.

आचार्यस्यैव तज्जाडं, यदिद्वयो नाऽव्यवृद्धते । गावो गोपालकेनेव, कुतीर्थनावतारिताः ॥ ६ ॥
किं चा करोत्यनायाग्ना, सुपदेष्टा सुचागपि । तक्षा तीक्षणकुठारोऽपि, दुर्दिल्पि विहन्यते ॥ ६ ॥

लोकः

१४ श्री वेचतार आभीरे भूलथी धी ढळी गयाधी आभीरिने उपको आभीरी बढी पडी, अने धीनो वि-
नाश थयो तेम आचार्यना उपकाशी श्रोता कोशी थाय तेवा श्रोता आभीरी सरवा अयोग्य जाणवा.
उपर लखेल १४ इष्टांतोमांथी चालु ग्रंथमां अ.चार्य महाराजे मगहीलेने स्थाने वज्रांतु इष्टांत आयुण् है. शेष चा-
ल्घणी विग्रेरेनां ३ इष्टांत उपर कहा प्रमाणे जाणवा. एवा श्रोताओने उपदेश करवो निरथक होवाथीज अहि आचा-
र्ये भद्रजीवोने उपदेश श्रवणना अधिकारी गण्या है. शेष भावार्थ सुगम है ॥ ३ ॥ ४ ॥

अर्थः—पूर्व गाथामां अयोग्यने उपदेश आपवो निरथक कहां ते संवन्धमां कोइ एवी शंका करे के उपदेश आ-
पवा छातां पण जो शिद्य बोध न पामे तो तेमां आचार्यांतुज अज्ञान है, कारण के गायो जो कुतीर्थमां (जलाशयमां
नहि उतरवा योग्य मार्गे) उतरी होय तो ते गोवालीआएज उतारेली जाणवी. एमां जेम गोवालीआओ गायो र-
क्षावानी विधिमां अज्ञान है, तेम शिद्यने बोध न थवामां अथवा कुतीर्थमां-अयमने विषे उतरवामां आचार्यांतुज
अज्ञान होय. ॥ ५ ॥ पूर्व गाथामां करेली शंकाना समाचान्तमां आचार्यश्री कहे हैं के श्रेष्ठ वाणीचालो-देशना ल-
क्षियवालो उपदेशक पण अनायने—अयोग्य जीवने शुं असर करी शके ? जेम तीक्ष्ण कुहाडावाङ्गो (वांसलावालो)
सुतार पण कुकाण्टे कापवामां थाकी जाय है. अर्थात् कापी शक न थयी. ॥ ६ ॥

अपशान्तमतौ शास्त्र-सहभावप्रतिपादनम् । दोषायाऽभिमन्त्रोदीर्णं शामनीयमित्र उवरे ॥ ७ ॥
उदितौ चंद्रादित्यौ, प्रज्वलिता दीपकोटिरमलात्पि । नोपकरोति यथांधे, तथोपदेशस्तमोऽधानाम् ॥

अथः—जेतुं चित्त अशान्त एटले क्रोधादिकषायो वहे व्याकुल अने अस्थिर बनेलु छे तेवा अशान्त चित्तवाळा प्राणीने शास्त्राना उत्तम रहस्यो—उत्सर्ग अपवाह इत्यादि विधिओनां तात्पर्यं प्रतिपादन करवां ते नवा उदय पासेला ड्वरवाळाने औषध आपवानी माफक दोषने माटे छे, तात्पर्य ए छे के जेतुं चित्त अने इन्दियो विषय विकारी अ-विकारयी निमुख यह होय तेवाखोने उत्सर्ग अपवाहादि विधिओंतुं ज्ञान मोक्षने माटे थाय छे, अने विषय विकारी अ-ज्ञान नयी जीवाने एज रहस्यो दुग्धतिमां ह्वावनार 'थाय छे, माटे शिष्यने बोय नहि थवामां कारण आचार्यंतु अ-ता होय, परन्तु ते अंगजीवने उपकार करी शकता नयी तेम पोर अज्ञान वहे अंग थेला प्राणीओने धर्मोपदेश पण कंइ असर करतो नयी, माटे अयोग्यने उपदेश आपनो निर्यक छे, अने ए निर्यकतामां आचार्यंतु अज्ञान कारण रूप नयी पण श्रोतानी अयोग्यता कारण छे ॥ ८ ॥

१ प्रसिद्ध छे के एकम ग्रकारता शास्त्रने सांभङ्गतारा अते अभ्यास करनाराओमांशी केउआपक सदाबारी अने केउलाएक स्वच्छन्दुकीबने छे, पटलुंज नहि पण ते स्वच्छन्दने पुष्ट करवामां पण एज शास्त्रने साधन यानावे छे.

एकतडागे यहदर, पिचाति मुजंगः शुभं जलं गौश्च । परिणमति विषं सर्पे, तदेव गवि जायते क्षीरम् ॥१२॥
समयत्रानतडागे, पिचाति ज्ञानसलिलं सतामसताम् विषयं, सिथ्यात्वमसत्सु च तदेवा? ॥१३॥
एकरसमतारक्षात्, पतति जलं तच मेदिनीं प्राय । नानारसतां गच्छति, पृथक् पृथक् भाजनविशेषात् ॥१४॥

अर्थः—शिष्यने वोध नहि थवामां आचार्यं तु अज्ञान कारणहप लभी पण शिष्यनीं अयोग्यता ते वात दृढ़ कुरवामाटे आचार्य श्री द्वैष्टन्त आणे ठें के—जेम एकज तलावामां रहेले साळ-मीडुं पाणी सर्पे अने गाय बन्ने पीए हें, त्यां सर्पां एज मीट जल होरुप वनी जाय हें अने गायमां दृश्यलय वनी जाय हें ॥१५॥ तेनी माफक सम्मग्नज्ञान उल्ल तलावामां समयत्रान रुप जल सज्जन अने दुर्जन बन्ने पीए हें, त्यां सज्जनामां एज ज्ञान समयक्-सत्यमार्गले परिष्कारे हें, अने दुर्जनामां एज ज्ञान मिथ्यात्व-असत्यमार्ग रुपे परिष्कारे हें, ती शिष्यने वोध न थवामां आचार्यानो दोष के शिष्यनो दोष ? ॥१६॥ पुनःएज वातने दृढ़ करवा माटे आचार्य श्री वीरुं दर्शात आणे ठें के—आकाळमांथी वषादहुं जल पहे हें, ते एकज जातना रस अथवा स्वभाववाळुं हें, ते एक रसवाळे जन शुची उपर पडीने उदा उदा पात्रना भेदयी उदा उदा रस—स्वभाववाळुं बने हें, अर्थात् सर्पना सुखमां पहे तो क्षेर थाय, स्वातीं नसन योगे छोपमां पहे तो मोती थाय, खासी भूमीमां पहे तो खालं थाय अने मीठ समीपां पहे तो मीट थाय, (वातपी आगलनी गाथाना अर्थां) ॥१७॥

स्वकर समपि वाक्यं, ब्रह्मतुवैदना। हिनिः स्तं तद्दत् । नानारसतां गच्छति, पृथक् पृथक् आवसासाद्य ॥ १३॥
 स्वं दोषं समवाप्य नेक्षति यथा सुखीदये कौशिको,
 राहिं कंकड़को न याति च यथा तुल्येऽपि पाके कृते ।

तद्दत्सर्वपदाथं मावनकरं संप्राप्य जैनं मतं,
 वोधं पापाधियो न यानित कुजनारतुल्ये कथांसंभवे ॥ १३ ॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥

अर्थः—(तेम) वक्ताना शुखमांशी निकलेण्डु एकज्ञ रस—स्वभाववालुं वचन उदा उदा भावने पामी उदा उदा स्वभावे परिणमे, अर्थात् जितेन्द्रियते वैराग्यरूपे, विषयविकारीते शुंगाररूपे, अने सकपायीने कपायवृद्धिरूपे परि-
 णमे तो तेमां आचार्यानो शुं दोष ? ॥ १३ ॥ उतः एज वातीनी इडता माटे वीजां इष्टांतो कहे छे ते आ प्रवाणे—
 शुरुनो उदय थये पुण घूवड जेम देखतो नयी तेम दुर्जन माणस पोतानो दोष पामीने एटले प्रत्यक्ष यमे पुण दोषल्लवे
 देखतो—जाणतो नयी, वकी जेम सारा मग अने गांगड मगने सरखी रीते पकवतां—संधतां पुण गांगड मग रंधाता
 नयी तेम सर्व पदाथने प्रगट करनार जेन दर्शन सरखो थर्म पामीने पुण पापवृद्धिवाला उजन प्राणीओ सरखी रीते उप-
 देश आपवा छतां पुण प्रतिवेद्य पामता नयी, अहिं जे मग अथवा मठ नामता धान्यना दाणा केटलाएक पुण असर न करे तो आचार्यनो शुं दोष ?
 वोने श्रेष्ठ आचार्यनो उपदेश लेश पुण असर न करे तो आचार्यनो शुं दोष ?

हठो हठे यद्ददभिप्लुतः स्याक्रोनाविवक्षा च यथा समुद्रे ।
तथा प्रपत्तयमानादक्षो लोकः प्रमादांभसि वंभ्रमीति ॥ १४ ॥ उपजाति० ॥
यावतप्रपत्तयकार्यभुद्धि-विवर्तते तावडुपायमध्ये ।
मनः स्वमर्थेषु विघटनीर्यं, नव्यासवादा नभसः पतंति ॥ १५ ॥ उपजाति० ॥ ३ ॥

अर्थः—जेम आपाना दोरीआ साथे जोहेलो बीजो दोरीओ समुद्रमां उपद्रवाळो होय, एटले एकनी साथे बी-
जाने तणां पहे, अने नाव साथे बांधेली नावने पण जेम समुद्रमां भटकां पहे एटले एकनी साथे बीजी नावने पण ता-
णां पहे तेम केवळ परनो विश्वास राखवामां ज निपुणता वाळो लोक प्रमाद रुपी जळ्यां अमण करे छे. तात्पर्य
ए के केवळ परना विश्वास उपर रहेनारो प्राणी स्वचुचिवडे हिताहित योग्यायोग्य विचारी शकतो नथी, परन्तु अ-
मुके जे कीर्धं तेज सत्य हरो एम माननारो होवाथी तेने यथार्थं वस्तुस्वरूप प्राप्त थां नथी ॥ १४ ॥ हे कारणथी
ज्यांसुधी परना विश्वासे कार्य करवानी दुड्ह वारंवार बदलाती रहे एटले बीजाना कहेवा मणाणे दोरवाया करे त्यां
सुधी पोताना मनने अर्थमां (वस्तुस्वरूप समजनमां) विशेषतः संगठित करवूं अर्थात् ज्यांसुधी वस्तुस्वरूप यथार्थ
न समजाय त्यां सुधी ते वस्तुस्वरूप विचार्या करवूं जेथी अन्ते यथार्थं वस्तुस्वरूप समजाहो. तेवा विचारत्वाथी
पोतानामांज आपतवादी पंगु माप्त थरो. कारणके आपतवाद केह आकाशमांथी डइता नथी, परन्तु आत्माना से ज्ञान
विचारबळथी आत्मामांज आपतवाद उपत्यन थाय छै? ५॥(१४ मी गाथामां हड शब्दनोअर्थ त्रापाना संभवथी लख्यो छे)

योविंत्यमानं न ददाति युक्तिं, प्रलक्षतो नाप्यनुभानतश्च ।

तद्बुद्धिमान् को तु अजेत लोके, गोरुंगतः क्षीरसच्छ्रबो न ॥ १६ ॥ उपजाति ॥

ये वैनेया विनयनिपुणोस्ते क्रियंते विनीताः, नाइवैनेया विनयनिपुणोः शाकयते संचिनेतुम् ।
दाहादिभ्यः समलम्भलं स्यात्सुचणं सुवणं, नायर्दिंडो भवति करत्कं छेददाहकमेण ॥ १६ ॥ मंदा० ॥

अथं—हवे उपदेशनी श्रुआतमां प्रथम यथार्थं वस्तुस्वरूपनी प्राप्तित माटे युक्तिशून्य वात न मानवानो उपदेश करे छे-
जे वातने प्रत्यक्षयी के अनुमानप्रमाणयी विचारतां पण युक्ति न आपि पटले युक्तिवाळी न होय, तो लोकपां तेवी
युक्तिशून्य वात कयो बुद्धिमान् पुरुष अंगीकार करे अथवा माने ? कारण के गायना शिंगडामांयी दृष्ट निकल्तुं
नथी (तेम युक्तिशून्य वातमांयी कंड वस्तु स्वरूप मल्लुं नथी) ॥ १६ ॥ बळी जे स्वभावेज विनयवाळा होय तेवा
शिर्घोज विनयनिपुण महात्माओना क्षिक्षणयी विनयी थाय छे, अने जे स्वभावेज विनयगुणी नथी तेवा अविनयी
शिर्घोने तो विनयनिपुण महात्माओ पण विनयवान न करी शके. जेम मेलवाळुं पण जो सुवर्ण होय तो अग्निआ-
दि उपक्रम वडे निर्मल सुवर्ण थाय, परन्तु जे लोखंडनोज गोळो होय ते कंड छेदवाथी के अग्निमां बाल्वायी इत्यादि
उपक्रमयी(उद्यगयी)सुवर्ण न बनी शके. आ गाथा कहेवानुं तात्पर्य ए छे के जेम स्वभावे अविनयी शिर्घ्य विनयी न शा-
य तेम स्वभावेज युक्तिशून्य वाद युक्तिअोना (कुयुक्तिअोना) शृणाराथी युक्तिवाळो (आप्तवाद) न शाय,
परन्तु जे स्वभावेज सत्यस्वरूपवाळी वात (आप्तवाद) होय तेज सत्य (आप्तवाद) थइ शके छे. ॥ १७ ॥

आगमेन च शुद्धया च, योऽपि; तस्मिगम्यते । परीक्ष्य हेमचंद्रं प्राणाः, पद्मपात्राण्यहेण किम् ॥ १८ ॥
मातुमोक्षद्वाला, मे भून्हल्यविचारितम् । ते पश्चात्परित्यन्ते, सुवणीयाहको यथा ॥ १९ ॥
ओतान्त्रे च कृतो कणों, वाग् बुद्धिश्च विचारणे । यः श्रुतं न विचारेत्, स कार्यं चिन्दते कथम् ॥ २० ॥

अथः—शास्त्रे आधारे अने युक्तिने आधारे जे अर्थ समाजाय ते अर्थ सोनानी पेडे परीक्षा करी ग्रहण करवो ।
पर्याप्ति पश्चपाती आग्रह शामाटे करवो, ? अर्थात् जे वात शाख अने युक्ति वन्से वहै समजाती होय तो ते वात अंगी-
कार करवामां कोइपण जातनो पक्षपात न राखवो ॥ १८ ॥ जे बालको (अज्ञान जीवो) पञ्चर विचारेना कृत्रिम
योदकने (लाड्ने) साचो लाडु जाणी विना विचार्यं ग्रहण करे छे तेओ पाडल्याँ । सुवणीयाहक पुरुषनी माफक
पश्चात्ताप करे छे, तात्पर्य ए छे के जे अज्ञान जीवो विना विचार्यं शाखाहुं वचन सांचु माने छे ते सुवर्णग्राहक पुरुष
वात पश्चात्ताप पारे छे, माटे श्रद्धा होय तोपण शाखाहुं वचन अंगीकार करवामां पोतानी शुद्धिनो सटुपयोग तो अन-
दय^२ करवो ॥ १९ ॥ कारणके (कुदरतथी ज) शाख वचन सांभळवा माटे बे कान चनेला छे, वचन अने शुद्धि विचार
करवामां (विचारवा माटे) चनेली छे, छतां पण जे पुरुष सांभळेला वचनने विचारे नहिं ते पुरुष पोताहुं कर्तव्य केम समजे? २०

१ सुवर्णग्राहक पुरुषतुं ददान्त ग्रन्थान्तरथी जाणाउं । २ आ श्लोकमां शाखाहुं वचन विचारीनेज ग्रहण करवातुं कहे-
वायी शाखनी संपूर्ण सत्यतामां खाची दशाची दस न जाणाउं, परन्तु संपूर्ण सत्य शाखाहुं वचन पण विचारीने ग्रहण क-
रयाणीयाख उपर दद्ध श्रद्धा यवा रुप युण उत्पत्त आय छे. अथवा तो दरेक शान्तो सत्य नहि दोवार्थी पण विचारीने
ग्रहण करवातुं कहेनानी आवश्यकता छे.

नेत्रोनिरिक्षय विषकंटकसंकटिदान्, समयक् पथा ब्रजति तान् परिहृत्य सर्वान् ।
 कुञ्जानकुश्तिकुट्टाइकुपार्णदोषान्, समयग विचारयत कोऽन्न परापवादः ॥ २१ ॥ वसंततिलका ॥
 प्रत्यक्षतो न भगवान्वषभो न विष्णु, रालोक्यते न च हरो न हिरण्यगर्भः ।
 तेषां स्वरूपगुणमागमसंप्रभावात्, शान्त्वा विचारयत कोऽन्न परापवादः ॥ २२ ॥ वसंत० ॥
 विष्णुः समुच्यतगदासुधर्मीदपाणि, शासुललक्ष्मीरास्थिकपालमाली ।
 अत्यंत शान्तचरितातिशयस्तु वीरः, कं पूजयाम उपशान्तमशान्तलघ्पम् ॥ २३ ॥ वसंत० ॥

अर्थः—मुसाफर जेम मार्गां रहेला विष, कांटा, सर्प अने जीवजंतु विगेरे नजरे जोइने अने ते सर्व छाईने सारे मार्ग जाय छे तेम कुडान, कुशाख, कुद्दि अने कुमारगूप दोषोने छोडीने कोइ विचारबंद सन्मार्ग चाले तो सारी रीते विचारी जुओ के एमां परापवाद (परनी निदा) धुं ? ॥ २१ ॥ वरेमानकाळमां साक्षातपणे तो नथी आदीभूषणवान नथी विष्णु के नथी देखाता महादेव के नथी देखाता ब्रह्मा ! केवल तेओंतु स्वरूप अने गुणतुं वर्णन ते ते शाक्षता महिमायी जाणीने जेमां देवत्व संभवे तेने देव मानवा तेमां विचारी जुओ के परापवाद (देवनी निदा) धुं ? ॥ २२ ॥ वर्णी विचारो के विष्णु तो उगमेली गदाशब्दवहै भयंकर हाथवाला । यहादेव लडकती मनुष्य खोपरीनी माला पहरनारा छे, अने चीर अत्यन्त शान्त चरित्रना अतिशयवाला छेतो हैकहोके अमे कोनी पूजा करीए ? शान्त चरित्रवालानी के अशान्त चरित्रवालानी ? अशान्त शान्तचरित्रवाला वीरनी पूजा करीए तो महादेव विगेरनो अपवाद कंयो कैम कहेबाय ?

दुर्योधनादिकुलनाशकरो चभूव, विष्णुहरस्त्रिपुरनाशकरो किलासीति ।
 क्रोंचं गुहोऽपि हठशस्तिहरं चकार, वीरस्तु केवल जगद्भित्तसर्वकारी ॥ २४ ॥ वसंत०॥
 पीडयो ममैष तु ममैष तु रक्षणीयो, वध्यो ममैष तु न चोत्तमनीतिरेषा ।
 निःश्रेयसाम्युदयस्त्राव्याहितार्थवृद्धे-वीरस्य संति रिपवो न च चंचनीयाः ॥ २५ ॥ वसंत०॥
 रागादिदोषजनकानि वचांसि विळो-रूपमत्तचेष्टिकराणि वचांसि शंभोः ।
 निःशोषदोषशामनानि सुनेस्तु सम्यग्, बन्ध्यत्वमर्हति तु को तु विचारयद्यवस् ॥ २६ ॥ वसंत०॥

अर्थः—पूनः पूज अर्थं दह करवा माटे ग्रंथकार कहे छे के विष्णु दुर्योधनादि दुष्टराजाओना कुळनो विनाश करनार थया, महादेव निश्चय निषुर राक्षसनो नाश करनार थया, कर्तिक स्वामिए पण कौच नामना राक्षसने दहसुकि रहित कर्यो, अने वीर तो केवल सर्वं जगत्पृथु कल्प्यण करनार थया, तो श्री वीरनी पूजा करवायां कर्तिकस्वामि विग्रहेनो अपवाद कर्यो केम कहेवाय ? ॥ २४ ॥ विष्णु विग्रहे पूजा थया तेथी रुँ ? प. शंकाना समाधानमां कहेवाय छे के—आ पारे दुःख देवा थोग्य छे, आ मारे रक्षण करवा योग्य छे, अने आ मारे हणवा योग्य छे, इत्यादि विचारवृत्ते श्रेष्ठ नीति (थर्थ) नथी. श्रीवीरनी शुद्धि तो सर्वं जनना मोक्षना उदयवाला सुखरूप हितना अर्थं—प्रयोजनवाली ने माटे वीरना कोइ शत्रुओ नथी तेप कोइ चंचवा-पीडवा योग्य पण नथी. ॥२५॥ वली विष्णुनो वचनो राग विग्रे दोष उत्पन्न करनारां छे, माहादेवनां वचनो उत्पन्न सरली देशा करनारां छे, अने श्रुतिनां (वीरनां) वचनो तो सम्यक् प्रकारे सर्वं रागादि दोषने शान्त करनारां छे तो हवे विचारी जुओ के वंदना करवा योग्य कोण के ?

यशोऽयतः परवधाय दुणा विहाय, आणाय यश जगतः शारणं प्रदृष्टनः
 रागी च यो भ्रवति यश विमुक्तरागः, पूज्यस्तयोः क इह व्रूत चिरं विचित्य ॥२७॥ वसंत ० ॥
 शाकं बज्जघरं वलं हलघरं, विणुं च चक्रायुधम्।
 स्कन्दं शाक्षिधरं शमशाननिलयं, लङ्घं विशलायुधम्।
 एतान् दोषभ्रयादितान् गतद्युणान्, वालान् विचित्रायुधान्,
 नानाप्राणिणु चोद्यातपहरणान्, कस्ताक्षमस्येद्युधः ॥ २८ ॥ शारदूल ० ॥

अर्थः—एक (देव) दयाना त्यग करी परमाणीनो वध करवा तत्पर थयेल है, अने एक (देव) जगत्तुं रक्षण करवा तरणस्य थयेल है, एक (देव) रागी है, अने एक (देव) वीतराग है तो अहि ए वे (देवो)मांशी पूजनीय कोण ? ते दीर्घकाळ सुधी विचार करीने कहो. अथात् हिंसक अने रागी देव अपूजनीय होय अने दयादृ तथा वीतराग देव पूजनीक होय तो एमां हिंसक अने रागी देवनो अपचाद (निदा-इर्ष्या) कर्यो केम करहवाय ? ॥२७॥ चब्ली वीतराग सिवायना बीजा देवोमां दोषटुं चिन्ह दशीति है के—इद्द वज्र धारण करे है, बलदेव हल राखे है, विष्णु चक्र राखे है, कार्तिकस्वामी शक्ति (ए नाम्तुं शक्ति) राखे है, अने क्षमासानमां रहेनार लह विश्रङ्ग राखे है, तो दोष अने भयवहे है, पीडायला, निर्दय, अज्ञान, विचित्र हथिआरो राखवानारा अने अनेक जीवोने हणवा माट उगामेला शश्वत्वाला ए झ-
 कादि देवोने कर्यो बुद्धिमान नपस्कार करे ? अपर्ति कोइ नपस्कार करे नहिं।

न यः शर्लं धने न च युवतिमंके समदनां, न शक्तिं चक्रं वा न हलमुशशालाच्यायुधवरम् ।
विनिर्दितं केवैः परहेतविधायुधतविधय शरकर्यं भूतानां तस्मिषुपयातोऽस्मि शरणम् ॥२९॥ शिवादिणी ॥

ओक.

स्वदो रागवशात् क्षियं बहवति यो हिथा वर्जिता, विष्णुः करुतरः कृतवन्वचरितः संकटः इवयं ज्ञातिहा ।
करायां महिषान्तक्त्वरवसामांसारिष्कामातुरा, पानेच्छुभ्यं विनायको जिनवरे स्वत्पोडपि दोगोऽस्ति कः ॥३०॥ शारदी ० ॥

अर्थः—जे भगवान् महादेववद् हाथमां विश्वलं राखता नयी, लोकामो कायविकार उपजावनारी स्त्री राखता नयी, कार्तिकस्वपीनी पेठे हाथमां शक्ति (ए नापन्दु खडग) राखता नयी, निष्णुनी पेठे चक्र राखता नयी, अनेक भग्नी पेठे हलमुशल विग्रेर आयुधने पण धारण करता नयी, सर्व कलेशवडे रहित ने, अने केवल परां कल्याण करवामाज जेनी तुळिड उनमाळ ठे एवा प्राणीओने धरण करवा योग्यते कपिने (श्रीविरामे) चरणेन हं आगेलोकुँ ॥२९॥ जे महादेव प्रेमने दश यह (पार्वती नामनी)स्त्री राखे ठे, 'हिस्क ठे, लज्जारहित ठे, कली विद्यु अतिकूँ ठे, कृत्व आचरण वाला ठे, कार्तिकस्वामि' पोते पोतानी जातियाठाओनेन विनाय करनारा ठे, अंविका कूँ, पाढा ओ हणनारी, पनुष्यना चरनी मांस अने शाहना आहारनी इच्छामां व्याकुळ ठे, अने गणपति मदिरापाननी इच्छामानो ठे. ए प्रपाण दरेक देवमां दोष विद्यपान ठे पण श्री जिनेन्द्र देवमां कयो अल्प दोष पण विद्यपान ठे? अर्थात् श्री जिनेन्द्र तदननिदंप होवायी तेज देव तरीके अंगीकार करवा योग्य ठे.

१ हिस्क इत्यादि दूषणोष्टाचा केवो रोते ठे तेनो विस्तार ते ते देवोनां चरित्रोपांचो जागचे.

ब्रह्मा छनाकिरा हरिदीशि सरलः न्यालुमस शारदा हरः
सुर्योऽप्युच्छिवितोऽप्याखिलसुक् सोमः कलंकांकितः ।

स्वनाथेऽपि विस्त्वयुः स्वलुपुः स्वथैरपरथः
सन्मागेऽखलनाद् भवति विपदः प्रायः प्रदृशणामपि ॥ ३१ ॥ शारदूः ॥

अर्थः—सन्मार्गमां स्वलुना पापवाधी (सन्मार्ग छोडी कुमारं चालवाधी) यां उकरीने महापुरुषोने पण विष-
निओं आवीं पडे छे, उदाहरण तरीके व्रह्मा लेदायला मस्तकवाढा थया, तिणु चक्रमां रोगवाला थया, महादेव तु-
दी गचेला लिंगवाढा थया, सूर्य पण (वांसला बडे) छोलायो, अग्नि सर्वभक्षी थयो, चन्द्र कलंक वाळो थयो, अ-
ने इन्द्र पण निश्चय शमीर उपर रहेली (हजार) योनिओ बडे दुःखी थयो, माटे तात्पर्य ए उके के दुनियामां देव
तरीके मनाता जीवो पण सन्मार्गथी पतित थया अने तेउं फळ पण भोगन्युं तो एवा सन्मार्गथी पतित थयेला
देवो पूज्य केम गणाय ?

ए देवोना संवधमां गायोक्त बनावो केवी रीते बन्या तेउं संक्षिप्त स्वरूप आ प्रमाणे—

ब्रह्मातुं मस्तक केम उदायुं ?

एक वार ३३ कोड देवो एकत्र यह परस्पर मातपितामुं वर्णन करवा लाया ते वरदते देवोप क-

हुं के महेश्वरना शातपिता जणाता नथी, माटे ते हरे ज नहिं, त्यारे सर्वज्ञाणाना अभिमानथी ब्रह्माना गद्भ आ-
कार वाळा पांचमा छुखे कहुं के हुं सर्वज्ञ जीवताँ छताँ पण एम कोण कहे हें के महादेवना मातपिता नथी ! हुं तेना
शातपिता जाणु छुं, एम कही ते पांचमुं मुख महेश्वरना शातपिताँ वर्णन करवा लाखुं जेथी महेश्वरे पोतानाँ मातपि-
तानी छानी बातने प्रगट करी देवाथी सर्व देव-समक्ष कनिष्ठा आंगलीना नखबडे ब्रह्मातुं पांचमुं मस्तक छेदी नालयुं.
केटलाएक एम पण कहे हें के ब्रह्मा अने विष्णुने परस्पर पोतानी महोदाइ संवंधि विवाद थताँ महेश्वर पासे आ-
ठया, त्यारे महेश्वरे कहुं के जे ब्रह्मारा लिंगनो पार पासे ते महोदो कहेदाय, जेथी विष्णु यणे नीचे पाताळ मुथी चा-
ल्या गया परन्तु लिंगनो पार न पापतां पाताळ अभिना तापथी शरीरे काळा थया ते पाढा आची महेश्वरने लिं-
गनो पार न पामयानी वात जणानी, अने ब्रह्मा उड़खलोकमां घणे दूर मुथी जताँ थाक्या पण लिंगनो पार न पा-
मया त्यारे लिंगना मस्तक परथी ६ मासथी पडती माळा रस्तमां यली तेने लिंगनो पार पमयानी साक्षी पूरवा क-
हेताँ यालाए हा कही जेथी महेश्वर पासे आयी माळानी साक्षी पूर्वक लिंगनो पार पामयानी वात जणावी, पोताना
अनंत लिंगनो पार पामयानी जटी वात कहेवायी महेश्वरे कनिष्ठाना नखनी ब्रह्मातुं पांचमुं मस्तक छेद्यु, अने मालाने
अस्पृश्य थयानो श्राप आयो।

॥ विष्णु नेत्ररोगी केम थया ? ॥

उद्यशी उपर मोह पामेला दुर्बिसा कहिए उर्वशीए अपूर्व वाहनमां वेसी स्वर्ग आववा जणाव्यु, जेथी दुर्वासाए

विष्णुने अने लक्ष्मीने पाढ़ु बल्ली नहि जोवानी प्रतिज्ञा पूर्वक बल्द रुपे रथमां जोड़ी स्वर्ग जाय हे, लक्ष्मी स्त्रो जाति होवाथी मंदगतीए रथ लेवे हे जेशी लक्ष्मीने वारंवार तजना करतां कोधी थयेला विष्णुपु पाढ़ु बल्ली जोँयु, जेशी पथमनी प्रतिज्ञा भंग करवाथी दुर्वासाए विष्णुने आंखमां परोणो सार्यो माटे विष्णु नेत्ररोगी यया. केड़लाएक कहे हे के नही किनारे तप करता विष्णुए नान स्नान करती तापसी सन्मुख सराग इष्टिए देवतां तापसीए श्राप आपवाथी नेत्ररोगी यया.

॥ महादेवना लिंगछेद केम थयो ? ॥

दाखवन नापना तपोवनमां महादेव रोज भिक्षार्थ जतां तापसीओ साथे अनाचार करे हे. जेशी तापसोने जाण पडतां श्राप आपि महादेवना लिंगनो छेद कर्याए.

॥ सुर्युनु शरोर केम छोलायु ? ॥

सुर्यनी रत्नादेवी नापनी खीने यम नामे पुत्र ययो, ते खी सुर्यना तापने सहन नहिं करवाथी पोतानी प्रति छाया (बींचुं रूप) सूर्यना आवास अुवरमां स्थापी पोते समुद्र किनारे जह योडी रुपे रहे हे. प्रतिभायाने शैवेशर अन्मद नापना वे पुत्र यया. एकवार यमे बहारथी आवी प्रतिभाया पासे भोजन मार्यु, पण माए (प्रतिभायाए) न आर्यु तेशी यमे लात मारी, त्यारे प्रतिभायाए श्राप आपी क्षय रोगी कर्या. यमे पिताने कहुं चिताने संशय प-

उतां जानयी जोयुं तो मृल माताने समुद्रने किनारे जोइ. तथा जाइ हीनी इच्छा नहि लातं बलाकारे रत्नादेवी साथे कीडा करतां अधिवनीदेव नामना वे कुमर यथा. ए बलाकरियी रत्नादेवीए सूर्यने आप आपी कुषरोगी कर्गी, जेशी धन्वन् नतरी पासे जनां शरीर छोलाव्याधी निरोगी थवाउं जणाव्युं, तेथी देवसुतारने बोलान्यो, त्यारे सुतारे काणुं के सहन करशो त्यां सुगी छोलीश, सूर्य हा कहेतां सुतार सूर्यतुं शरीर छोलवा लाग्यो परन्तु केटलाक बखत पछी सहन नहि वतां सीतिकार कर्यो तेथी सूर्य अर्ध शरीरे छोलायलो अने वाकीना भागमां कुषरोगी रखो.

वीजा कहे ढे के घांडीरूप रत्नादेवी साथे बलाकार कर्या पछी ससराने ठपको आऱ्यो के तमारी दिकरी मने छोडी वीजे स्थाने रहे छे. त्यारे ससराए काणुं के लहारे ताप सहन नयी यतो ते अं फरे? जो यासे राखवी होय तो शरीर छोलावी नाव (शेष चिंगत उपर प्राप्ते.)

॥ अरिन्न सर्वभक्ती केम थयो ? ॥

एकवार कोइक कृषि कोइ स्थाने जवा माटे विचासयी अरिन्ने पोतानी ल्ही सोंपी बाहर गयो, त्यारे कोइ वीजा कृषिए आची अरिन्ना देवतां ते ल्ही साथे वयभिचार कर्यो, त्यारवाह ते कृषिए आची ल्हीने देवतां इंगित आकारथी अनाचार जाणी अरिन्ने पूछतां केंपण जवाव न आयो त्यारे रक्षण करता योग्यतुं रक्षण नहि करवायी अने पूछतां उत्तर न. आपवायी कोधी यथेला कृषिए अरिन्ने श्राप आपी पदित्र के अपवित्र सर्व वस्तुनो भक्षी कर्यो.

॥ चन्द्र कलंकी केम थयो ? ॥

चन्द्र देवताओं ना गुरु बृहस्पति ने तां दरगोज अस्यास करवा जता गुरुनी सी उपर राम थयो अने अनाचारी
थय थयो, ए वातनी बृहस्पति ने लबवर पठतां चन्द्रने श्राव आपी कलंक वाको कर्थी.

॥ इन्द्र ईजार योनिवाळो केम थयो ? ॥

एकवार गौतम मुनि ने आश्रमे इन्द्र आठिं, ते वरते गौतममुनि बहार गयेला हता. इदै गौतमनी सी अहया-
ने अति हवरूप वाळी जोइ मीती चांधी कीडा करी, एटलायां गौतम मुनि ने आवेला जाणी इदै विलाडीनु रुप लह-
नासवा लाएयो. गौतमने शक पठतां ज्ञाननो उपयोग मुक्ती जोयुं तो इन्द्र पोतानी सी साथे अनाचार करी नासी
जतो जाण्यो. तुर्देज विलाडी छने नासी जता इन्द्रने श्रावी इदैनु खरीर हजार योनिओवाढँ कर्यु, अने पोता-
ना शिष्योने इन्द्र साथे अनाचार करवा मोकलया पण पोते न गया. त्यारवाद हेवोए पोताना स्वामि इन्द्रनी एवी दु-
दंशा देवी गौतमुनीने अतिशय चिनयथी समजाव्या त्यार श्रीर उपर हजार योनिओने घदले हजार चबु कर्फी ए
कारणयीज इन्द्र सहस्रचषु नामधी प्रसिद्ध है.

संधुर्द नः स भगवान् योऽपि नान्ये, साक्षात् दृष्टतर एकतमोऽपि चैषाम् ।

श्रुत्वा वचः सुचरितं च पृथग् विशेषं, वीरं गुणं तिशयलोलतया श्रिताः स्मः ॥ ३२ ॥ ब्रह्मंतः ॥

नाऽस्माकं सुगतः पिता न रिपवहतीःयां धनं नैव है
देहं नैव तथा जिनेन न हातं किंचित् कणादादिभिः ।

किंत्वेकान्तजगद्विदितः स भगवान् वीरो यतश्चामलं

याकं सर्वमलोपहर्तु च यतस्तद्वक्तिमंतो वयम् ॥ ३३ ॥ शास्त्रैऽल० ॥

अर्थः—ते श्री वीरपशु अमारा बन्धु नथी अने बीजा देवो अमारा शनु नथी, वक्ली ए देवोमाना कोइ प्रक देवने पण सारी रीते प्रत्यक्ष-ननरे देवेला नथी, परन्तु उदी जूदी जातना विशेष परमार्थ युक्त वचन अने उत्तम चरित (सदाचार) वाला श्री वीरने तो तेमना अतिशयवाला (अतिश्रेष्ठ) गुणो उपर अपने मेम थवाणीज आश्रित थया छीए, ॥ ३२ ॥ अथवा उद्भ भगवान् (श्रीवीर) कंइ अमारा पिता नथी, तेम अन्यतीर्थी देवो अमारा शनु नथी, वक्ली तेओए जेम अपने धन आप्यु नथी तेम जिनेन्द्र देवे पण कंइ आप्यु नथी, तेमज कणाद विनेरेण (विशेषिक मतना आचार्योऽ) अमारं कांइ हरी लींगु नथी, परन्तु जे कारणथी केवल जगत्तु कल्याण करनार ते श्रीवीर भगवान् ज छे, कारण के श्रीधीरतु निर्षल वचन-शास्त्र सर्व दोषने दुर करलालू के ते कारणथीज अमो ते श्री वीरपशुनी भक्तिवाला छीए.

हितेषी यो नित्यं, सततमुपकारी च जगतः; कृतं येन स्वरथं बहुविधरुजातं जगादिस् ।
स्फुटं यस्य लेयं करतलगतं वेति सकलम्, प्रपश्यध्वं सनतः सुगतमसमं भक्तिमनसः ॥ ३४ ॥ शिख ० ॥

असर्वभावेत यद्वच्छया चा, परात्मुहृथ्या विनिकितस्या चा ।
ये त्वां नमस्यन्ति मुनिन्द्रचन्द्र, तेऽप्यामरी संपदमात्मवान्ति ॥ ३५ ॥ उपजागि० ॥

अर्थः—जे वीर भगवान् हंसेशां पाणिओतुं कलयाण इच्छनारा छे. जे जगतने निरन्तर उपकार करनारा छे. यणा प्रकारना व्याधिओ वडे पीडायलु. आ जगत जेणे मुखी कर्तु छे, वक्ती जेने फ्रेय पदार्थं साक्षात्-प्रत्यक्ष यह रहेल छे, तेथी जे भगवान् हंसेलीमां रहेला पदार्थनी वेठे सर्वं (फ्रेय पदार्थने) प्रत्यक्ष रहे जाणे छे. अने जेना सर्वो सर्वेण्णी जगतमां चीजो कोइ (अन्यदेव) नभी ते बुद्धने (श्रीबीरने) हे सज्जनो तमो भक्तिवाळा मनथी अयचा भक्तियुक्त मनवाळा यह शुद्ध देवपणे अंगीकार करो ॥ ३४ ॥ हे श्रेष्ठ मुनिणणां चन्द्र समान श्रीबीर ! थोडा भावभी, अथवा संशामात्रभी (नमस्कार करवानो व्यक्त विचार न होय छातां स्वाभाविक रहते नमस्कार यह जाय तेथी), करो ते मुरुण्यो पण स्वर्णनी संपदाओ प्राप्त करो छे. अथवा नमस्कारातुं फल मळवो के नहि इत्यादि शंकारी पण जे मनुष्यो तने नमस्कार अथवा चीजानी प्रेरणार्थी, अथवा नमस्कारातुं फल मळवो के नहि इत्यादि शंकारी पण जे मनुष्यो तने नमस्कार करो ते मुरुण्यो पण स्वर्णनी संपदाओ प्राप्त करो छे. अथवा अल्प भावादिके करेलो नमस्कार जोके श्रीब योक्षफल न आपे तो पण परंपराए स्वर्णनी संपदाओ आपे अने एवीज परंपरा यणो काढ चालू रहेतां भव्य जीवोने योक्षफल पण आपे ए तातपर्य छे ॥ ३५ ॥

यदा रागेद्वादसुरारनापहरणे, कृतं मायाचीत्वं शुचनहरणासवतमतिना ।
तदा पूजयो वन्यो हरिरपरिमुक्ताऽधुवतया, विनिषुक्तं वीरं न नमति जनो मोहयहुलः ॥३६॥ शिख ० ॥

लोक.
ल्यक्तत्वार्थः परहितरतः सर्वदा सञ्चर्हं, सर्वकारं विविधमसमं यो विजानाति विश्वम् ।

ब्रह्मा विष्णुभवतु वरदः रां करो वा हरो वा, परम्याऽन्वितं चरितमसमं, भावितसं प्रपद्ये ॥३७॥ मंदोकान्तम् ॥

अथः—जगतीनी सार वस्तुओ हरी लेवामां आश्वकत शुक्रिवाला विष्णुए उपारे राग देवषी दानवो अनेहे—
बोनां इत्व (सार वस्तुओ) “इत्वा माटे मायावीपर्णं प्रगट कर्म् त्यारे अश्रवपणावेन नहि शुक्रायेल (परहेव विष्णु प-
ण वारवार नवा अवतार अयत्वा नवां मायावी रूपो धारण करनार होवायी पोते अधुन्) एवा विष्णु मोहवाला
माणीओने पूजनिक अने वन्दनीक यथा । कारणके जेम बाजीगार बाढ़कोने आश्रयकारी धाय तेम बोहवाला जीवोने
चमत्कार देवाडनारा देव वन्दनिक पूजनिक होय, माटे एवा अति मोहवाला प्रत्युष्यो अश्रुवपणाथी रहित (याया-
वीपणाथी रहित) श्रीवीरते नमस्कार करता नथी ॥ ३६ ॥ हवे निष्पक्षपातपणे गुणी देवने अंगीकार करवा थाए-
कहे हेके—स्वार्थ रहित, परतु कल्याण करवामां तत्पर, अने हेशां अनेक रूपवाला अनेक आकारवाला विचक्ष अ-
ने विषय एवा जगतेन ज्ञानवहे जे संपूर्ण जाणे हेते देव ब्रह्मा होय विष्णु होय के वरदान आपनार शंकर वा एव
(अयत्वा हरी—इन्द्र) होय, अने जेतु चरित्र अचित्य अने, अतुल होय तेवा कोइ पण देवने हुं भावयी अंगीकार
कर्तु ॥ ३७ ॥ पुनः एज प्रकारतु निष्पक्षपातपणं आगळना झोकोमां जणावे हे—

प्रक्षपातो न मे वीरे, न देषः कौपिलादितु । युक्तिमद्वन्नं यस्य, तस्य कायः परिप्रहः ॥ ३८ ॥

अचरयमेषां कतमोऽपि सर्ववित्, जगद्वितेकान्तविशालशासनः ॥

स एव मुण्डो मतिरुद्रमचक्षुषा, विशेषमुक्तैः किमनर्थपूडितैः ॥ ३९ ॥ उपजाति० ॥
यस्य निखिलाश्च दोषा, न सान्ति सद्गुणाश्च विद्यन्ते ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तरम् ॥४०॥आया० ॥

अर्थः—हे आचार्य पोतानी मःयस्यता प्रदर्शित करे द्वे—मारे श्री वीरभुमां प्रक्षपात नथी के कपिलादि-
कामां द्वप्रभाव नर्थी, परन्तु जेन्तु वचन, मने युक्तिवाङ्मुखे ते देवनो मारे स्वीकार करवो योग्य है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा-
दिक जे अनेक देवों के ते सर्वपांश्ची सर्वज्ञ अने केवल जगतना कल्याण माटेज जेन्तु विशाल शासन (गंभीर आ-
वाजो) ने पर्वो तो अवश्य कोइ एकज देव है, अने बुद्धिरूप मुहूर्म चक्षुवहे ते देव कोण है ते शोधवो जोइए, परन्तु
विशेषहित (सामान्य जीवों अने ए देवोंमां फेरफार न होवायी) अथवा विशेषणे वर्णवला छहां अनर्थ उत्पन्न
करवामां परिडत सरवा एवा बीजा देवो वहे भूमि पर्योजित है ? ॥ ३९ ॥ जे देवमां सर्वदोषोमांसो एक पण दोष
न होय, परन्तु सर्व सद्गुणोज होय एवा देव वाहे ब्रह्मा होय विष्णु होय अथवा महेश्वर होय के लिन-अरिहत होय
तो तेमते पण मारो नमस्कार है, अहि ब्रह्मादिक्ते नमस्कार करताथी पण वस्तुतः श्री जिनेश्वरनेज नमस्कार जाणवो ॥
॥ ४० ॥ अहि सुधीमां देवतवादिनो उपदेश समाप्त थयो, हवे जगतनी उत्पत्ति संबन्धमां वे विविध प्रकारना मतभेद
हैं ते दशर्थिते, लोकतत्त्व ग्रंथनो वास्तविक प्रारंभ पण हवे ज थाय हैं ॥

। अथ लोकादितत्वस्ये प्रथमं लोकतत्त्वम् ॥

(आर्यवृत्तानि)

लोकोक्तिप्रत्यये, विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थ । अविदितपूर्वे गेषां, स्यादादवितिश्रितं तत्त्वम् ॥४१॥
इच्छानि कृत्रिमं स्थाटि-वादिनः सर्वे एवमिति लोकं । कृतस्ते लोकं माहेष्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥४२॥
नानश्वरजं केचित् केचित् सोमाग्निसंभवं लोकं । इन्द्रगादिपृविकल्पं, जगदेतत् केचिदच्छन्ति ॥४३॥

अर्थः—जेओए प्रथम स्यादादवहे निर्णित थयेउँ तत्त्व जाण्यु नयी तेवा (स्यादाद तत्त्वते नहि जाणनार)
वादीओ जगत्-क्रिया-अने आत्मतत्त्वना संबन्धयां भिक्ष भिक्ष अर्थं विवाद करे छे ते आ भयाणे-॥ ४१ ॥
सुष्ठिवादीओ (जगतनो कर्ता पाननारा) आ सर्वं जगतने हृतिम् (कोइ पण बनावेउँ छे पस) माने छे, अने
माहेष्वरादि यत्वाढा सप्तस्त जगतने सादिसात (सष्टीनो उत्पत्त करनार छे तेप कोइ विनाश करनार पण छे पस)
माने छे ॥ ४२ ॥ केटलाएक आ जगत इभरउँ बनावेउँ नहि एप माने छे, केटलाएक आ जगतने चन्द अनेआभिन्नी
उत्पत्त थयेउँ माने छे, अने केटलाएक द्रव्यादि द मेदवाढु आ जगत माने छे, ए द्रव्यादि द मेदवाढु जगत का-
या दशेनवाढा माने छे ? अने ते द्रव्यादि द मेद कया ? तेनी स्पष्टा आणल्ना क्षोकयी करे छे. ॥ ४३ ॥

द्रुठयगुणकम्भसामान्य-युक्तिविशेषाद्(न)कणा। शोतृस्तरव्यम् । वैशेषिकमेताथ-जगदप्येतावदतावद् ॥४४॥
 हच्छन्ति कार्त्त्यपीयं, केचित्सर्वं जगन्मनुष्यायं । दक्षमजापतीयं, ब्रह्मोक्त्य केचिद्द्वच्छन्ति ॥ ४५ ॥
 केचित्प्राहुस्तुति-त्वद्धा गतेका हरिः शिवो ब्रह्मा । शंभुर्विजं जगतः, कर्ता विष्णुः किया ब्रह्मा ॥४६॥

अर्थः—वैशेषिक दर्शनना आचार्य कणादनां तस्य इव्य—गुण—कर्म—सामान्य—सपवाय-अने विशेष ए प्रेतोयी हैं।
 अथवा मूल गायथां “विशेषाद्”, पाठ होय तो अर्थ ए धाय के—कणादो (एटले वैशेषिक दर्शनबालाओ) इव्य—गुण
 —कर्म—सामान्य—सपवाय—अने विशेष ए हने तस्व माने हैं, जेष्ठी ए वैशेषिकदर्शन आटला जगतने पण एटलाज तस्ववालुंपासे
 हैं ॥४४॥ केटलाएक आ जगतने कार्त्त्यप नामना क्रषीयी पेदा थयेण्डु माने हैं। केटलाएक आ जगतने
 आदिवालुं(पर्यम मनुष्य उत्पन्न थयो त्यारवाद अनुक्रमे वीजा पदार्थी उत्पन्न यथा) माने हैं, अने केटलाएक आ जगतने
 दक्ष नामना प्रजापतियी उत्पन्न थयेण्डु माने हैं ॥ ४५ ॥ केटलाएक कहे हैं के पक्क प्रकारनी मूर्ति विष्णु महादेव
 अने ब्रह्मा एम त्रण प्रकारनी बनेली हैं, तेमां जगतनुं कारण महोदेव, कर्ता विष्णु, अने किया ब्रह्मा हैं।

१ अर्थ “युक्तित” नो अर्थ “समाधाय” थई याके हैं,
 इव्य—गुण—कर्म सामान्य—विशेष—अने—सपवाय प. ६ तत्त्व वैशेषिकमतमां हैं। अने केटलाएक अभावने सा
 तमुं तस्व कहे हैं। नैयायिक अने वैशेषिकदर्शन अमुक तकावत तिथाय लगभग सरालुं हैं।

वै जगत् केचिदिन्दुष्टनिति, कोचित् कालकृतं जगत् । इश्वरप्रेरितं केचित्, केचिद् ब्रह्माविनिमितं ॥ ४७ ॥
अन्यक्षमवस्थं सर्वं, विश्वमिन्दुष्टनिति कापिलाः । विज्ञासिमार्तं शूल्यं च, इति शाकशय्य निश्चयः ॥ ४८ ॥

युक्षप्रभवं कोचिद्, द्विगत् कोचित् प्रभावतः । अक्षसात् क्षरितं कोचित् कोचिदंडोद्वं जगत् ॥ ४९ ॥
यादन्दिक्षमिदं सर्वं, कोचद् भूताविकारजे । कोचच्छानेकरूपं तु, बहुधा संप्रधाविताः ॥ ५० ॥

अर्थः—केटलाएक आ जगतने विष्णुयी बनेंडु, केटलाएक कोल्पी बनेंडु, केटलाएक इच्छानी मेरणावाङ्गु
(इच्छानी मेरणा विना एक पांडुं पण न हाले पर्वु), अने केटलाएक ब्रह्मातुं बनायेंडु माने हें ॥ ४७ ॥ कपि-
ल (सांख्य) मतवाला आ जगतने अव्यक्तयी (प्रकृतियी) उत्पन्न यथेंडु माने हें. अने शावायमतनो निणेय पूर्वो
के आ जगत् विज्ञान मात्र (जाणवा मात्र) अने शूल्य (जे देखाय हेति केंद्र नहि पर्वु) हें ॥ ४८ ॥ केटलाएक
आ जगतने आत्मायी उत्पन्न यथेंडु, केटलाएक देवना प्रभावयी उत्पन्न यथेंडु, केटलाएक अक्षरमांथी (ब्रह्मामांथी)
बनेंडु अने केटलाएक इडाकारामांथी उत्पन्न यथेंडु माने हें, ॥ ४९ ॥ केटलाएक आ जगतने यादचित्क (अतिकृत—
अक्षरमात) उत्पन्न यथेंडु, केटलाएक पञ्चभूतना विकारयी यथेंडु, अने केटलाएक अनेक रूपवाङ्गु माने हें, एम जा-
तनी उत्पत्तियां अनेक मतवादीओ अनेक विचारमां दोहेला हें.

१ सत्त्व, रजसु, अने तमो युणनी दुल्यता ते प्रकृति. ए प्रकृतियी बुद्धि, बुद्धियी अंहकार, अंहकारयी
स्पशाद्विद् २६ तो गण, अने गणमाना स्पशाद्विद् पांचमांथी पञ्चभूत यदा यह जगतनी रचना आज ॥ ४९ ॥

वैष्णव पतम् जगत्तुं स्वरूपं आ रीते कर्तुं हे ।—
 जले विष्णुः स्थले विष्णुः राकाशो विष्णुमालिनि । विष्णुमालाकुले लोके, नास्ति किंचिद्वैष्णवम् ॥५१॥
 सर्वतः पाणिपादान्तं, सर्वतोऽहिंशिरोमुखं । सर्वतः श्रुतिमान् लोके, सर्वमाश्रित्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥
 उधर्मस्तुमध्यः शाखा-सर्वत्थं प्राहुरन्वयं । छन्दांसि यस्य प्राणिं, यस्तं चेष्टि स वेदावत् ॥ ५३ ॥

अर्थः—विष्णुपतवाङ्मा कहे हे के जल्लमां विष्णु (आहमा), स्थलमां विष्णु अने आकाशमां पण विष्णु हे ।
 विष्णुना समूहशी व्यास थपेला आ जगतमां विष्णु सिवाय बीजुं कंड नयी, अहि तात्पर्य ए के सर्वं जगत् विष्णुप
 हे, जेसी विष्णुथी व्यतिरिक्त (जटुं) जगत् नयी, अर्थात् आसुं जगत् विष्णु द्वस्तुप हे ॥ ५१ ॥ सर्वं बाजुर
 (सर्वत्र) जेना हाथपगना ठेडा (एट्ले हाथपगा) हे, सर्वं बाजुर नेत्र मस्तक अने मुख हे, सर्वं बाजुर जेना कान हे,
 अने जे सर्वं पदार्थमां आश्रय करी रहेला हे एवा विष्णुबालुं आ जगत् हे ॥ ५२ ॥ महात्माओ ब्रह्मने उपर मूढ
 अने नीचे शाखावाला अविनाशी पीपळात्मा अर्थात् द्वस्तुप पीपळात्मा नीचे अने शाखा उपर होय हे, अने
 विनाश स्वभावी होय हे, पण आ ब्रह्मरूप पीपळो तो उपर मूढ अने नीचे शाखावालो अने अविनाशी स्वभावालो
 कहे हे, के जे ब्रह्मरूप पीपळात्मा पत्र वेदमन्त्र हे, तेवा ब्रह्मने जे जाणे ते वेद जाणनार (सर्वं पदार्थ जाणनार)
 कहेवाय, अने ए ऐदनो जाणनार ते आ जगतनो जाणनार कहेवाय ए तात्पर्य ।

उत्तराः—

युराणमां जगतनी उत्पति आ रीते कही है।—
 १५ तस्मिन्देकाणीचीभूते, नष्टस्थावरजंगमे । नष्टामरनेरे चैव, प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ६४ ॥
 केवलं गव्हहरीभूते, महाभूतविवर्जिते । अचेत्यात्मा विभुतस्तथे, शायानसतप्यते तपः ॥ ६५ ॥ युग्मम् ॥
 तत्र तस्य शायानस्य, नाम्ना पद्मं विनिर्गतम् । तरुणाकमंडलनिम्नं, हृष्यं कांचनकर्णिकम् ॥ ६६ ॥

तादिन्दिशं पद्मे भगवान्, दंडकमंडल्यज्ञोपवीतसुगच्छमवक्षसंयुक्तः ।

ब्रह्मा तत्रोपप्रस्तेन जगन्मातरः सृष्टाः ॥ ६७ ॥ आर्यमिद ॥

अर्थः—ते जगत प्रलयकालमां ज्यारे एक समुद्रस्य यह जाय है (सर्वं जलकार थाय है) अने स्थावर तथा वस पाणीओ नाश पामे, देव अने युध्यो नाश पामे, सर्वं अने राक्षसो नाशपामे अने तेस यवार्थी महाभूत (पृथिव्यादि स्थूलपदार्थो) रहित थतां ज्यारे केवल आ जगत एक पोली गुफा सरखुं थाय त्यारे न कली शकाय एवा आत्मावाला विणु त्यां (समुद्रमां) सृता सृता तप करे है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ त्यां समुद्रमां सृतेका विणुनी नाभीपांथी पद्यानहना सूर्यमंडल सरखुं तेजवालुं मनोहर अने सोनानी कर्णिकावालु कपल निकल्युं, ॥ ६६ ॥ अने ते कमलांथी दंड कमंडल जनोइ शुगचर्म अन वज्र सहित भगवान ब्रह्मा उत्तम यथा ते ब्रह्मण जगतनी माताओ (आगलना क्षोकमां कहेली) उत्तम करी ॥ ६७ ॥

ब्रह्माए उत्पम करेली माताओं थे बनेहुं जगत आ रिते—

अदिति: सुरसंघानां, दितिरसुराणां भृत्यरन्धाणां । विनता विहंगमानां, माता विष्वकारणाम् ॥५८॥
कादः सरोषपाणां, सुलसामाता तु नागजातीनां । सुरविश्वतुपदानां, इला पुनः सर्वद्विजानाम् ॥५९॥युं
प्रभवस्तासां विस्तर-सुपागतः कोचिद्विक्षिति । कोचिद्विद्वयवर्णं, सुष्टुं वणीदिभिसेन ॥ ६० ॥
कालः सुजति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः । कालः सुसेषु जागति, कालो हि दुरातिक्रमः ॥ ६१ ॥

अर्थः—देवसमूहनीं प्राता अदिति, असुरोनीं प्राता दिति, पुरुषोनीं प्राता पश्चिमोनीं माता
विनता, सर्पोनीं प्राता कदू, नागजातना सर्पोनीं प्राता सुखसा, पशुओनीं प्राता घुरभि, अने सर्व धान्यादिक वीजोनीं प्राता
पृथ्वी ॥ ५९ ॥ ए प्रमाणे ते माताओंपांथी उत्पम थएल जे देव विग्रेरे तेनोज विस्तार पास्यो छे, (अने तेथी आ जग-
त बन्युं ए तापय छे) एम केटलाएक यतवाळा पाने छे. अने केटलाएक तो एम माने छे के पथम आ जगत धनिया-
दि वर्णविभग बिनाहुं हहुं ते जगतने तेणे (ब्रह्मादिकपांथी कोइए) वर्णवस्थायालुं बनाव्यु, पण नवूं जगत बनाव्यु
एम नहि. अहि प्राता एटले जेमांथी जेनी उत्पत्ति ते तेनी प्राता जाणवी. ॥ ६० ॥ काळवादीओ कहे छे के काळ भूतोने
(पुरुषादि तस्योने) बनावे छे, काळ प्रजानो (पृथ्वादिनो) नाश करे छे, अने सुतेलाओंपां पण काळ जागे के
(अथवि प्राणिओं ऊंचता होय पण ते प्राणीओं काळ तो पोताहुं कार्य करतोल रहे छे) माटे काळ निश्चय उल्लयन
करता योज्य नयी ॥ ६१ ॥

प्रकृतिनां यथा राजा, रक्षाधामह योग्यतः । तथा विश्वस्य विश्वात्मा स जागन्ति महेश्वरः ॥ ६२ ॥

अन्यो जंतुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयो । इश्वरप्रेरितो गच्छेत्, सर्वो वा श्वभ्रमेव च ॥ ६३ ॥

सूक्ष्मोऽचिंत्यो विकरणणः सर्वचित् सर्वकर्ता, योगाभ्यासादमलिनाधिया, योगिना ध्यानगमयः ।
चन्द्राकर्णिनिष्ठितजलस्फुटदीक्षिताकाशासृतिः—येयो नित्यं शमसुखरौतिश्वरः सिङ्किकामः ॥ ६४ ॥

अर्थः—यद्युपेत्ति इश्वरवादिओ कहे हैं के जैप आ लोकमां प्रजाना रक्षणपाटे राजा प्रयत्नवालो हैं, तेप आ जगतना रक्षणपाटे ते जगतनो आपा महेश्वर जागे (अर्थात् -जगत पहेश्वरनी प्रेरणायी चाले हैं) ॥ ६२ ॥ कारणके प्रोताने युख अश्वा दुःख आपवामां असमर्थ एवो आ बीजो (पहेश्वर सिवायनो बीजो) जीव इधरनी प्रेरणायीन सर्वगमां के नरकमां जइ शके हैं ॥ ६३ ॥ यद्युपेत्ति इश्वरवादी प्रम पर्ण कहे हैं के सहस्र (इन्द्रियोने अगोचर), अर्चित्य, इन्द्रियरहित, सर्वकर्ता, योगिना अभ्यासयी निर्मल धुरिवाला योगीओवेद् ध्यानयीज औद्धववा योग्य, अनेक चन्द्र-सूर्य-अग्नि-पृथ्वी-जल-वायु-यजमान-अने आकाश ए आठ रूपवाले इश्वर शान्ति सुखवां प्राप्त यथे-ला मोक्षनी इच्छावाला पुरपोर निरन्तर ध्यान करवा योग्य है (वातपर्य के चन्द्रदिवालूं जगत इश्वरीज बनेलुं हैं) ॥ ६५ ॥

ब्रह्मदीदिओं आ प्रसाण कहे हैं—

आमभीदिदं तमोऽनुत्-प्रपञ्चात्मलक्षणं । अप्रतक्षयमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ६५ ॥
तातः सर्वं मूर्खगच्छा-वान्यस्तो न्यंजयश्चिदं । महाभूतादिवृत्तौजाः, प्राहुरासीत्तमोऽनुदः ॥ ६६ ॥
लोकानां स च वृद्धयर्थं, मुख्यवाहुरुपादतः । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैद्युतं, शूद्रं च विन्यवस्तयत् ॥ ६७ ॥

अर्थः—पहेला आ जगत् अंधकारमय, नहि जाणी यक्षाय एवुं, लक्षण रहित, तर्कमां (विचारमां) न आवी
शक् एवुं, नहि जाणवा योग्य (जेमां कोइ जाणवा जेवी चस्तु नहि एवुं), अने सर्ववाङ्गुष्ठ जाणे सह गयेउं होय एवुं
हहु ॥ ६५ ॥ त्यारपछी कोइक वरवत् अव्यवत् (स्पष्टपणे उपलब्ध न यह शके एवा) स्वयंभू भगवान् (ब्रह्मा)
के जेवुं तेज महाभूत विगेरेधी हंकारायलु हहुं ते भगवान् अंधकारनो लाग्य करता प्राट थया (अथर्व स्वयंभू भगवाने
महाभूतादि आवरण दुर करी पोतार्तुं तेज पकाशित कर्तुं ॥ ६६ ॥ त्यारवाह ते स्वयंभू भगवान् (ब्रह्मा) लोकनी
युद्ध करवा माटे (मतुर्जयस्तु बनायवा माटे) पोताना शुद्धमांथी ब्राह्मणो उत्पन्न कर्य, बुजामांथी क्षत्रियो उत्पन्न
कर्य, साध्यमांथी वैश्य उत्पन्न कर्य, अने पाणामांथी शूद्र उत्पन्न कर्य, (६०मी गायामां जे उत्पन्न थयेली अबण
सुहिने ब्रह्माए बणादि विगागं सहित करवाउं कहुं ते आ त्रण झलोकता भावर्थयी स्पष्ट थु).

ओक.

सांख्यमतवाला आ प्रमाणे कहे हैं—

पञ्चविधमहासुतं, नानाविषदेहनामसंस्थानं । अन्यकस्तुष्टानं, जगदेतार केचिदिच्छान्ति ॥ ६८ ॥
सर्वगतं सामान्यं, सर्वेषामादिकारणं नित्यं । सृथममालेगमचेतन, मकियमेकं प्रधानालयं ॥ ६९ ॥
पक्षतेमहांस्ततोऽहकारस्तस्माद् गणश्च पोडशकः । तस्मादपि षोडशाकात्, पञ्चमः पञ्चमूलानि ॥ ७० ॥

अर्थः—आ जगत् पांच प्रकारना (पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु—अने आकाश ए पांच महाभूत) सूक्त तत्त्वो
चालुं, अनेक प्रकारनां शरीर (रूप) नाम अने आकारवालुं [कारणके आ जगतना पदार्थेनुं रूप नाम अने
आकार नियपित्र नष्टी), अव्यक्ततर्थी-प्रकृतिथी (सांख्यदर्शनमां प्रकृतिनां अव्यक्त अने प्रवा-
य नाम है तेष्ठी) उत्पन्न यथेष्ठु है, एम केटलाएक (सांख्यदर्शनीयो) माने है ॥ ६८ ॥ अव्यक्ततर्थु स्वरूप
कहे है के—ते अव्यक्त (प्रकृति) जगतमां सर्वव्याप्त, सामान्य (सर्वनी उत्पत्तियां साधारण कारण), सर्वसूत्रोत्तुं
आदिकारण (सूक्त), नित्य, सूहृप, लिङ [ओळखवाली निशानी] रहित, अचेतन, क्रियारहित, अने एकज ते,
॥६९॥ ते प्रकृतिथी महान् (एटले उड्डि), महानर्थी अहंकार, अने अहंकारमांषी स्पशादि १६ नो गण (सप्तशादि ५
इन्द्रिय, सप्तशादि ५, विषय, शुद्धि, लिंग वचन, हाथ, पाणि, ५ कर्मेन्द्रिय, अने पन) उत्पन्न याय है, अने १६ ना ग-
णमां जे स्पशादि पांच हैं तेमांथी दरेकपांथी एकक भूत (तत्त्व) उत्पन्न यवाणी पांचपांथी याय है.

२. सत्त्वगुण, रजोगुण, अने तमोगुणको जे समावस्था है ते अध्यक, प्रधान, अवधा, प्रकृति कहेवाय. (वददर्शनसुधाये).

मूलप्रकृतिरविकृतिमहदाच्या: प्रकृतिविकृतायः सप्त। शोहशाकस्थ विकारो, न प्रकृतिर्वच विकृतिः पुरुषः॥७॥
गुणलक्षणोऽन यस्मात् कायकारणलक्षणोऽपि ना यस्मात् । तस्मादन्यः पुरुषः, फलभास्तो चत्यकर्ता च॥७॥

अर्थः—सांख्यदर्शनमां प्रकृतिं, शुद्धिं, अंहकारं, ५ शुद्धीन्द्रियं, ५ कर्मन्द्रियं, १ मनः, ५ तन्मात्रा (रूप-रस-गंध-शब्द—अने स्पर्श) ५ भूतः, अने पुरुषं ५ तत्त्वं कर्णां छेः ५ २५ पां जे मूलप्रकृति (अव्यक्त अयवा प्रयान एवा पर्याय नामवाङ्मी) ते कोइनो विकार नयी, कारण के कोइ पदार्थं तु रूपान्तर नयी, अयवा जेनी उत्तर-ति होय ते विकार कहेवाय. माटे प्रकृतिनी उत्तपत्ति नहिं होवायी प्रकृति ए विकार नयी, तथा शुद्धि, अंहकार, ने १६ नो ५ प्राभृत ए सात तत्त्व बीजां तत्त्वेनु कारण होवायी प्रकृति अने कार्यरूप होवायी विकृति पण छेः, अने १६ नो गण तो केवळ विकृति-विकार ज छेः, अने ए सर्वेयी शिख पुरुष—आत्मा तो प्रकृति नयी तेम विकृति पण नयी, ॥७॥ पुरुष ए प्रकृति नयी अने विकृति पण नयी तेनु कारण कहे छेः—जे कारणयी आत्मा सत्त्वादि गुणरहित होवायी गुणाङ्गां नयी. कारणके सत्त्वादि 'गुण' तो प्रकृतिनो धर्म छे पण पुरुषनो नहि. बर्की जे कारणयी अविकृत होवायी गुणाङ्गां नयी, अने प्रकृत्यादि २४ तत्त्वोत्पत्तिमां कारणवालो नयी, ते कारणयी फलनो भोक्ता (चास्त्रविक रीते कार्यवालो नयी, अने प्रकृत्यादि २४ तत्त्वोत्पत्तिमां कारणके कर्ता तो प्रकृतिन हे, अभोक्ता पण उपचारयी भोक्ता) अने पुण पापनो करनार नहिं होवायी अकर्ता (कारणके कर्ता तो प्रकृतिन हे, अने पुरुष तो रुण पण वांकु चाळवा असमर्थ छें माटे अकर्ता) एवो पुरुष—आत्मा पूर्णोक्त २४ तत्त्वोयी अन्य जुदो छे.

१ रजस् आदि गुण ते प्रकृति, अने रजस् आदि गुणता विकारो ते विकृति छे, अने गुण रहित केवळ आत्मा ते पुरुष छे, माटे पुरुष ए प्रकृति नहिं तेम विकृति पण नहिं प तात्पर्य.

प्रवर्त्तमानान् प्रकृतोरिसाव शुणार् तमोदृतावा द्विपरीतचेतनः।
अहंकरोलीत्युवोऽपि सन्यते, तुणस्य कुबुजीकरणोप्यनीश्वरः ॥ ७५ ॥
विज्ञहिषाङ्गमेवेतत्, अहमथैवभासनात् यथा । तैमिरकस्येह, कोशकीटादिदर्शनम् ॥ ७६ ॥
क्रोधयोक्तदोन्माद, कामदोषावपुहुताः । अभूतानि च प्रश्यन्ति, तुरतोऽवस्थितानि च ॥ ७७ ॥

अर्थः—पुनः प्रकृति अने विकृतियी पुरुषनीभिन्नता स्पष्ट करे छे—तमोगुणवडे अथवा अज्ञानरूप अंशकारवहे आहुत थवाणी (हंकाराथी) जेतु ज्ञान विपरीत—उल्लङ्घ थइ गयुँ छे एयो चेतन (पुरुष—आत्मा) जे एक तुण मात्राने पण कुबुज करवाने(वाङ्कु वाळवाने)असमर्थ छे, तोपण अहानी आत्मा “हुं कर्लुं” पण माने छे । ए प्रमाणे सांख्यदर्शनमां आ जगत्ते प्रकृतियी उत्पन्न येण्डे २९ तत्त्ववाढुं माने छे ए तत्पर्य छे ॥ ७३ ॥ हये वो उपतवला जगत्तनी उत्पत्ति आ प्रमाणे करे छे के—जेम आंखे अंशारीया आवश्यकी खम्यां कोशकीडा (कीडानीं कोइक जाती विशेष हे कोशकीडा) विग्रहेतु दर्शन याय छे तेप असमर्थवानशी (जगत्तने जाणवा जेवुं पूर्ण समर्थ ज्ञान नहि होवायी) आ जगत विज्ञानमात्र रूपे (ते पदार्थ नहि छतां ते पदार्थ जोउँकुं एवा रुपे) देखाय छे । परन्तु वास्तविक कंड नयी ॥ ७४ ॥ कारणके क्रोध, शोक, पद, उन्माद, काम विग्रह दोपाशी परामव पामेला—भ्रमवाला शेषेला जीवो अभूतोने (अवस्थुओने) पण पोतानी सन्मुख रहेली वस्तुओरुपे देले छे । तात्पर्य ए छे के जगत कंड नहि होवा छतां पण खम्यां आ वस्तु जगत छे पूम देले छे ॥ इति विविधमते लोकस्वरूपम् ॥

॥ अथ आत्मतत्त्वम् ॥

पुरुषवादीओ जगतनी उत्पत्ति आ प्रमाणे कहे छे।
 पुरुष परिवर्द्ध सर्व, यदृभूतं यच्च भावन्य । उत्तमूलत्वस्येशानो, यद्वेत्तातिरिहति ॥
 यदेजंति यज्ञेजंति, यद्दूरे यदु अंतिके, यदंतरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्य चाल्यो, यस्मात्परं नापरमस्ति
 किंचिद्यस्मात्पाणीयो, न उपायोऽस्ति कश्चिद् वृक्ष हव सतत्यो दिवि तिठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषस्वेषण,
 सर्व एक पूर्व हि भूतात्मा, तदा सर्व प्रलयिते ॥ १ ॥

द्वाचेव पुरुषो लोके, क्षरश्चाऽक्षरं पूर्व च ॥ क्षरश्च सर्वस्तानि, कूटस्थोऽक्षरं उच्यते ॥ २ ॥

अर्थः—जे थपेलु छे, जे यवानु छे, अथवा मोक्षपणानो अधिष्ठिति, अने जे अन्तवडे बृद्धि पासे ले ते सर्व आ-
 त्मा (एक ब्रह्म ज) छे. जे हाले छे (त्रस छे), जे हालो नथी एटले स्थावर छे, जे दूर छे, जे नजीक छे, जे आ स-
 र्वनी अंदर छे, जे आ सर्वनी बहार छे, जेनाथी कोइ उत्कृष्ट नथी, जेनाथी कोइपण नानो नथी, जेनाथी
 कोइ मोटो नथी, अने (विराटरूप होवायी) आकाशमां दृश्यनी माफक जे एक स्थिर रहे छे, तेज एक
 आत्माना रूप वहे आ सर्व जगत् पूर्ण भरेलु छे. जगतमां ज्यारे ए एकज भूतात्मा (पुरुषरूप) होय छे,
 त्यारे बीजुं सर्व (पृथिव्यादि लघान्तर तत्त्वो) ए आत्मासं लय पासी जायें छे ॥ ३ ॥ कारणके लोकमां शर अ-
 ने अक्षर ए केज पुरुष छे, त्यां सर्वभूत (पृथिव्यादि पांच महात्म्यो) क्षर पुरुष कहेवाय छे. अने इच्छर अक्षर पुरुष कहेवाय छे. ॥२॥

वीजा । आत्मवादीओं आ प्रसाणे कहे हैं—

विद्यमानेनु शाहेषु, विद्यमाणेनु वक्तव्यु । आत्मानं ये न जानन्ति, ते वै आत्महता नराः ॥ ३ ॥
आत्मा चै देवता सर्वं, सर्वमात्मन्यचारिथां । आत्मा हि जनयत्वे, कर्मयोगं शारीरिणाम् ॥ ४ ॥
आत्माधाता विद्याता च आत्मा च, सुखदुःखयोः । आत्मा स्वर्गश्च नरकश्च, आत्मा सर्वजिदं जगत् ॥ ५ ॥

अर्थः—शास्त्रो विद्यमान होय, अने बक्ताओंनो (उपदेशकोनो) पण संयोग वर्ते छाँ जे जनो आत्माने ओ-
ळयता नभी ते जनो लरेवर पोताना आत्मावडे पोतेज हणायला जेवा है ॥ ३ ॥ आत्मा एज सर्व देवो है (अर्थात्
ब्रह्मादि सर्व देवत्व आत्मां छे) कारण के आत्मामांज सर्व (ब्रह्मादि देवत्व विग्रे) रहेहुं है, अने जीवोने
कर्मनो संवेद्य पण आ आत्माज कराने हैं ॥ ४ ॥ आत्मा एज धाता (व्रह्मा) अने सुख दुःखनो विद्याता (करनार)
पण आत्मा है, सर्वं ते आत्मा अने नरक ते पण आत्मा है, विदेष शु कहेहुं ! आ सर्व जगत ते आत्माज है ॥ ५ ॥

१ जे धर्म आत्माकुं अस्तित्व मानतो होय तेज आत्मवादो कहेवाय पको अहिं संदेश नहिं, पण जे धर्म
अन्य इच्छरव्यु करतापेणु नहिं स्वीकारी आत्मा पोतेज करां भोका छे पम स्वीकारे ते आहि (चालु प्रकरणमां)
आत्मवादी जाणवो.

न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सुजाते प्रकुः । स्वकम्फलसंयोगः, स्वभावादिप्रवर्तते ॥ ६ ॥
 आत्मज्ञानसदभावेत्, स्वयं मननसंभवात् । स्वकर्मणश्च संग्रहते: स्वयंभूजीव उच्यते ॥ ७ ॥
 नैनं छिदति शास्त्राणि, नैनं दहति पावकः । नैनं कलदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥ ८ ॥

अर्थः—परमेश्वर आ लोकनु कर्तापु करतो नयी (अर्थात् परमेश्वर जगत् बनावतो नयी), तेष्य कर्माने पण बनावतो नयी, परन्तु सर्वे जीवोना पोतानो संयोगज स्वभावयी प्रवर्तते, अर्थात् जीवे करेला कर्मनो-ज एवो स्वभाव छे के तेषां तेवा प्रकारनी जीवप्रवृत्तिओ प्रवर्तती रहे, एपां इच्छनो संबंध कड नयी ॥ ६ ॥ आत्मज्ञान-ना स्वभाववदे (आत्मामां ज्ञान स्वभावेन रहेलु होवायी), अने ते ज्ञानवदे पोतानेज मनेन करवानो (विचार करवानो) संभव होवायी, अने पोतानों कहिने उत्पत्त करवायी आ जीव—आत्माज स्वयंभू कहेवाय डे, आ स्वयंभू वदना अर्थ माटे श्लोकमां त्रणवार “स्वयं” अने वणवार भू धातु (थी बनेला शब्द भाव—भव—ने भूति) कहो छे, जीव “स्वयंभू” शब्द यनाव्यो छे ॥ ७ ॥ आ आत्माने शब्दो छेदी शकतां नयी, अनि बाळी शकतो नयी, जल भी-जावी शकतो नयी अने पवन शोषी (शुकावी) शकतो नयी, ॥ ८ ॥

अङ्गेऽबोऽयम्भेदोऽयं, निकपाल्योऽयमुच्यते । नित्यः सततगः स्थाणु-रचलोऽयं सनातनः ॥ ११ ॥

लोऽक्षरः स च सूतात्मा, संप्रदायः स उच्यते । स प्राण स परं ब्रह्म, स हंसः पुरुषश्च सः ॥ १० ॥

नान्यस्तस्मात्परो दृष्ट्या, श्रोता मनवाऽपि वा भवेत् । न कर्ता न च भौत्काऽपि, वक्ता नैव च विद्यते ??

अर्थः—माते आ आत्मा उड़ाय चहि, भेदाय नहि, उपनाम रहित (उपाधिभी यर्योऽ देव—नारंक इत्यादि नाम रहित), नित्य, निरंतर ज्ञानवडे सर्वं पदार्थोऽयं गति करनार, दिव्यर, अचल, अने सनातन—शाश्वत कहेवाय छे ॥ ११ ॥ ए आत्माज अक्षर (अविनाशी), पंचभूत रूप, संपदाय रूप, प्राणलूप, परब्रह्म रूप, हंस अने गुरुप (विराट एकुष) कहेवाय छे ॥ १० ॥ माटे जोनार, सांभजनार, विचार करनार, कर्ता, भौत्का, के वक्ता ए आत्मागी नीजो श्रेष्ठ कोइ नक्षी, अथवि आत्माज श्रेष्ठ जोनार सांभजनार इत्यादि छे, ॥ ११ ॥ ए प्रयाणे आत्मवादीओ आत्मान् स्वरूप माने छे ॥

॥ इति विविधमते आत्मतत्त्वम् ॥

॥ अथ कर्मतत्त्वम् ॥

कर्मवादीओ आ प्राणे कहे हैं—
चेतनोऽध्यवसायेन, कर्मणा संनिबध्यते । ततो भवतस्य अवै, तदभावात् परं पदम् ॥ १२ ॥
उद्गरेहीनमात्मानं, नात्मानमवसादयेत् । आत्मनैवात्मनो वंधु—रात्मैव रिपुरात्मनः ॥ १३ ॥
सुतुष्टानि च मित्राणि, सुकुद्धाश्रिष्ठ शक्रवः । न हि मे तत्करिष्यन्ति, यस पूर्वकृतं मया ॥ १४ ॥

अर्थः— हवे कर्मवादीओ कर्मवृत्त स्वरूप केवी रीते प्रतिपादन करे हैं ते कहेवाय है—चेतन पोवाना अध्यवसायो (मनना परिणामो) वहे कर्मणी वंधाय हैं, ते कारणी आत्माते संसार प्रास थाय हैं, अने ते कर्मवंधना अथवा संसारना अभावी आत्मा परमपद-मोक्ष मेल्वे हैं, ॥१२॥ माटे आत्माए कर्मशी दीन-दुःखी पूंछा पोतानो उद्धार करवो, अने पोताने कर्मणी दुःखवालो न करवो, कारणके आत्मा एज आत्मानो घटले पोतेज पोतानो वंधु हैं, अने पोतेज पोतानो शहु हैं, माट पोतानो उद्धार करवो के अधेगति करवी पोतानाज हाथमां है, ॥ १३ ॥ कहुहें के—जो मे पूर्व तेवा प्रकारहुं जे छुख दुःख संबन्धि कर्म कर्हुं नयी तो अति तुष्ट थेला मित्रो अने अति क्रोध पासेला शहुओ मने ते छुख दुःख नहि करी शके, ॥ १४ ॥

शुभाऽशुभानि कमरीणि, स्वयं कुर्वन्ति देहिनः । स्वयमेवोपकूर्वन्ति, दुःखानि च सुखानि च ॥ १६ ॥

वने रणे शत्रुजलानिमध्ये, महाणं वैर्यतमस्तके वा ।

सुसं प्रमत्तं विषमादिथं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ १६ ॥

स्वच्छंदतो नाहि धनं न उणो न विद्या, नाप्येव धर्मचरणं न सुखं न दुःखम् ।

आरुह्य सारथिवशेन कृतान्तयानं, दैवं यतो नवति तेन पथा ब्रजामि ॥ १७ ॥

अर्थः—जीवो शुभ अथवा अशुभ कर्म पोतेज करे छे, अने तेथी दुःख अथवा सुख पोतेज भोगवे छे. ॥१६॥ व-
नमां (वनस्पतिवाली अटवीमां), रणमां (रेतीवाला अथवा वनस्पति विनाना उल्जन भागमां), शत्रुना समूहमां, जङ्गमां
(नदी आदिक जङ्गाशयोमां), अग्निमां, महासमुद्रमां, अथवा पर्वतना शिखर उपर रहेलो जीव सूरी—उंधतो होय, प्रमा-
दी (वेशुद्ध) होय, अथवा विषम द्विष्टिमां (भयंकर स्थितिमां) होय तोपण पूर्वं करेलां पुण्य जीवतुं रक्षण करे छे.
॥१६॥ कोइ उपदेशक कहे छे के—यन्, शुल के दुःख ए कंडे पोतानो इच्छाए जीवते कंड करी
शक्तां नथी ते कारणयी (ए प्रमाणे धनादि जीवते कंड नहिं करी शक्तां होवायी) सारथीना वशवहे हुं यमनी पा-
लवी (ठाठडी) उपर वेसी देव जे मार्गं लह जाय ते मार्गे हुं जाउँ-छुँ, (अने जो धन विगोरे जीवते कंड करी
शक्तां होत तो धन विगोरे वणुं भेडव्या छातां ते धन विगोरे मने मरणयी केम न वचाड्यो ? तात्पर्य के —घण्य
यन—गुण—विद्या—धर्मचरण . सुख के दुःख भले भेडवो, परन्तु आ जीव पूर्वकर्मना फलव्यी बचतो नष्टी ॥ १७ ॥

यथा यथा पूर्वकृतस्य कर्मणः, फलं निधानस्थमिक्षोपातिष्ठते ।
तथा भथा तत्प्रतिपादनोद्यता, प्रदीपहस्तेवं मतिः प्रवतते ॥ १८ ॥
विधिर्विधानं नियतिः स्वभावः, कालोऽग्रहा इच्छरकर्म दैवयम् ।

भाग्यानि कर्माणि यमः कृतान्तः, पर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ १९ ॥

यत्तपुराकृतं कर्म, न स्मरन्तीह मानवा । स्तदीदं पांडवश्रेष्ठ ! दैवमित्यभियते ॥ २० ॥

अर्थः—जेम जेम पूर्वकृत कर्मेनु फल निधानमां रहेला शब्दनी ऐठे शास्त्र शाय है तेम तेम है ते कर्मेनु आ फल है एम सूचवनारी उदी बुद्धि जाणे हाथमां दीधो शाखीने आवी होय तेम पर्वते हैं, अर्थात् बुद्धि पण परीक्षा है उपजे है के जाणे जीवने आ अग्रुक कर्मेनु फल है एम प्राप्त दृश्यते हैं, कारण के बुद्धि कर्मने अनुसारे होय है ॥ १८ ॥ विधि, विधान, नियति, स्वभाव, काळ, ग्रह, इच्छरकृति, दैव, भाग्य, कर्म, यम, अने कृतान्त ए सर्व पूर्वकरेला कर्मनां पर्यायनामो (एकार्थवाचक नामो) हैं ॥ १९ ॥ पूर्वकरोकां दैव विगोरे पूर्वकृतनां नामो है एम कर्मने ते वालने दह करवा माटे अन्य शाखीय प्रपाण दशर्षि है के—है पांडवोमां श्रेष्ठ ! युधिष्ठिर ! जे ते पूर्व करेला कर्मने पर्वते हयो आ जनमां सरण करी याकता नथी ते (पूर्वकृतकर्म ज) “ दैव ” कहेवाय है—ए कुण्डो उपदेश है ॥ २० ॥

स्वभावादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

कः कंटकात्ता प्रकरोति तेष्यं, विचित्रता वा सुगप्तिणां च ।

स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं, न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ॥ २१ ॥

ददर्याः कंटकस्तीक्ष्णं, क्रज्जुरेकश्च कुञ्चितः । कलं च वर्तुलं तस्या, वद केन विनिर्मितं ॥२२॥

अक्षरवादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

अद्वरात् द्वारितः काल—स्तस्माद्यापक इष्यते । व्यापकादिप्रकृत्यंतां, तां हि सुष्टुं प्रचक्षेते ॥ २३ ॥

अथः—हवे स्वभावादीओ सुव दुःखादि विचित्रता कम्बिनी नहि पण स्वांभाविक कंहेडे ते आपमाणे—कांटा-ओनी (अणीओनी) तीक्ष्णता कोण करे छे ? अथवा मृगादि पशु अने पक्षीओमां विचित्रता (तफावत) कोण करे छे ? एतो सर्व स्वभावथी ज थएलु छे, कोइनी इच्छाए कंहे चन्हुं नथी, तो उद्यम या थाटे करव्हो ? ॥ २१ ॥ तेनु द्वष्टान्त कहे छे के—बोरडी दृक्षमां प्रयत्न सरखो कर्या छतां पण एज बोरडीनो एक कांटो सीधो अणीदार होयछे, अने एक कांटो वांको होय छे, अने फळ गोळ थाय छे ते विचित्रता कोणे बनावी ? ते कहो ॥ २२ ॥ हवे अक्षरवादीओ कहे छे के—अक्षरमांथी (ब्रह्मांथी) काळ खरी पड्यो, तेथी ते काळ ज्यापक गणाय छे, थाटे जेनी आदिमां काळ अने अन्तमां प्रकृति छे तेने निश्चय सुष्टि कहे छे, (पण आ सुष्टि कम्स्वरूपचाली ले एम नहि).

अक्षरवादीओमां पण केटलाएक आ प्रमाणे कहे है—

अक्षरांशस्ततो वायुः—स्तस्मानेजस्ततो जलं । जलात् प्रसूता पृथ्वी, भूतानामेष संभवः ॥ २४ ॥

अंडवादीओ आ प्रमाणे कहे है—

नारायणपराइवक्ता—दंडमव्यक्तसंभवं । अंडर्यांतस्तवमी भ्रेदा; सप्त द्विपा च मेदिनी ॥ २५ ॥
गर्भोदकं समुद्राश्च, जरायुश्चापि पवताः । तास्मिन्देहे त्वमीलोकाः, सप्त सप्त गतिष्ठिताः ॥ २६ ॥

अर्थः—अक्षरना अंशमांथी (आकाशमांथी) वायु उत्पन्न वयो, वायुमांथी तेज, तेजमांथी जल, अने जल-
मांथी पृथ्वी उत्पन्न यह, पञ्चमहाभूतानी ए प्रमाणे उत्पन्नि शह, माटे रसिनी उत्पन्नि कम्हेत्वरी नशी ए तात्पर्य
॥ २४ ॥ अंडवादीओ कहे है के—नारायणी पर (शिव) अव्यक्त ते अव्यक्तमांथी एक इंड उत्पन्न यहु, यहि-
मां आ वया भेद् अने सातद्वौपवाली पृथ्वी पण इंडामांथी उत्पन्न यहेली जाणवी ॥ २५ ॥ आ सप्तदो ते इंडामांठु
'सोत लोक रहेला है ॥ २६ ॥

१ मू—भुवः—स्वः—महः—जन—तप—अने सत्य ए सात लोक उपर अने तल—वितल—अतल—चतुरल—एसातल
—तलातल—ने पाताल ए उ लोक नीचे हैं ।

तत्रोहाचः स भगवा-नुषित्वा परिचत्सरं । स्वयमेवात्मना ध्यात्वा, तदंडमकरोद हिता ॥ २७ ॥
तत्थ्यां स शकलाभ्यां तु, दिवं भूमिं च निर्वमे ॥ गाथाधि: ॥
अहेतुवादी आ प्रमाणे कहे छे ॥

हेतुराहिता भवन्ति हि, भावा: प्रतिसमयभाविनश्चित्राः ।
भावादते न भाव्यं, संभवराहितं स्वपुण्पमिव ॥ २८ ॥

अर्थः—ते इंडामं ते आदि (नारायण) भगवाने संपूर्ण १ वर्ष वसीने पौते विचार करीने पौतेज ते इंडाना वे
भाग कर्य ॥ २७ ॥ ते वे कंकडामांशी एक कंकडाने स्वर्गीरूपे स्थायो, अने बीजा कंकडाने भूमि-पृथ्वीरूपे स्थायो,
माटे स्वर्ग नरकादि कर्मजन्य नरी ६ तात्पर्यः ॥ दरेक समयमां विचित्ररूपे यनारा आ पदार्थो निश्चय हेतु विनाना
हेतु, अर्थात् पदार्थोमां जे कंकड फेरफारो शाय हेतु तेमां कोइ हेतु—कारण नरी (स्वाभाविक रीते थया करे हे), कारणके
भाव विना भाव्य न होय(एट्ले पदार्थ विना पदार्थपरिवर्तना न होय) अने भाव्य रहित भाव न होय, अने जो भाव
न होय (एट्ले पदार्थो ज अभाव होय) तो आ सधबुँ भाव—भाव्य इत्यादि आकाशना गुणनी पैठे असद—अ-
संभवित हेतु. माटे विचित्रता ओ कर्महेतुयी नहि पण स्वाभाविक हे ए तात्पर्य ॥ २८ ॥

नियतिवादी आ प्रमाणे कहे हैं—

प्राप्तव्यो नियतिवलाश्रयेण योऽर्थः, सोऽवद्यं भ्रवति वृणां शुभोऽशुभो वा ।
भृतानां महति कृतेऽपि हि प्रथने, नाऽभाव्यं भ्रवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥ २९ ॥

परिणामवादी आ प्रमाणे कहे हैं—

प्रतिसमर्थं परिणामः, प्रत्यात्मगतश्च सर्वभावानाम् ।
संभवति नेच्छयापि, स्वेच्छा क्रमवर्त्तनी यस्मात् ॥ ३० ॥

अर्थः—हे नियतिवादी कहे हैं के—जे शुभ वा अशुभ अर्थं नियति वलना वशे प्राप्त धरानो होय ते शुभाशुभ होय ते अवश्योने अवश्य प्राप्त थाय ज. जीवो धणो उद्यम करे तो पण जे न धरानु होय ते नज थाय, अने जे धरानु होय तेनो नाश न थाय (एटले जे धरानु होय ते अवश्य थाय ज.) माटे सर्वभावो नियतिवलने आधीन है, पण कर्म हेतु वाला नयी ए तात्पर्य ॥ २९ ॥ सर्व पदार्थोंनो पोतपोताना स्वरूपां रहेलो—कर्ततो परिणाम दरेक समर्थ इच्छाविना पण थाय है, कारणके पोतानी इच्छा तो अनुक्रमे प्रवर्तनारी होय है, माटे वस्तुना परिणाम इच्छायी ज याप सम नहिं, अहिं इच्छाना अशब्दे कर्मनो अभाव सूचववायी वस्तुगत परिणामो कर्मशीज प्रवैत है एम पण नहिं ॥ ३० ॥

भूतवादीओं आ प्रमाणे कहे हैं—

सखं पिशाचा स्म वने वसामो, भेरीं करायैरपि न रुक्षामः ।

अर्थं च वादः प्रशितः पुणियां, भेरिं पिशाचाः किल ताडयन्ति ॥ ३१ ॥
गच्छम्—पृथिव्यपस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि, तत्सुदाये शारीरेन्द्रियविषयसंज्ञा मदशास्तिवच्छैतन्यं

जलयुद्युदवद्जीवा शैतन्यविशिष्टः कायः पुरुष हृति ॥

अर्थः—ए प्रमाणे इच्छाविना थता कायेते पण लोको इच्छावहे थयेहुं माने हेते संबन्धमां एक अन्य ग्रन्थमांथी द्रष्टान्त आणे के—अमे पिशाच लवेवर वनमां रहीए छीए अने हस्ताश्रवडे-हाथवडे भेरीनो स्पर्श पण करता नथी, छतां दुनियामां (वन-हेते) के भेरीने भेरीना नाद थतां) एवी कहेवत प्रसिद्ध थहुं हेते के भेरीने निश्चय पिशाचो ज वजाहे ते मां वायु आदि अन्य प्रयोगे भेरीना नाद थतां) परिणाम स्वतः प्रवते हेते, छतां इश्वरच्छादिकथी माने ए प्रमाणे 'परिणामवादी' कहे हेते, तात्पर्य ए हेते के सर्व वस्तुता परिणाम स्वतः प्रवते हेते, जल, अग्निं, वायु ए चार ते ते असल्य हेते एम परिणामवादी कहे हेते, ॥ ३२ ॥ हवे भूतवादी कहे हेते के-पृथ्वी, अने जेम महुडां चिरो सामग्रीओ तत्त्वो हेते, ते चारेना समुदायां शारीर-इन्द्रिय—अने विषय पूर्वां नामो पढ़े हेते, ते ते तत्त्वोना संप्रीती एकठी थतां मद शावित उत्पन्न थाय हेते, तथा जळमां जेम जुदा जुदा परपोदा उत्पन्न थाय हेते, ते ते तत्त्वोना सुदायां जुदा जुदा जीवो उत्पन्न थाय हेते, तेमां चैतन्य युक्त जे शरीर तेनी पुरुष-जीव पूरी संज्ञा हेते ॥ ३२ ॥

भौतिकानि शरीराणि, विषया: करणानि च । तथापि भंदैरन्त्यस्य, कर्तुत्वमुपदिद्धयते ॥ ३२ ॥

नास्तिकमत्वात्ता आ प्रमाणे कहे हैं—
एतावानेव लोकोऽयं, याचाननिन्दियगोचरः । भद्रे द्वकपदं शेषद्, यद्ददन्ति बहुशुताः ॥ ३३ ॥

अर्थः—ए प्रमाणे शरीर-विषय (स्पर्शं रसं विग्रे) अने इन्द्रियो पूर्वोक्त पृथ्व्यादि भूतनी बनेली है तो प-
ण मंद बुधियाछा जीवो कहे हैं के ए बीजानां बनावेली हैं, ॥ ३२ ॥ ए बन्ते बक्तव्यपां पृथ्व्यादि महाभूतोयी
स्थिरचना मानी ए तात्पर्य ॥ जेटलो आ बहु आदि इन्द्रियोयी देखाय है तेटलो ज आ लोक है. छतां बहु-
श्रुत नाम धरावनाराओ जे घणो मोटो लोक कहे हैं, तेतो है भोक्ती! आ बहुनां पगलां सरबो कहे हैं, ॥ ३३ ॥

१ स्वरूपवंत छहननी उंपर आस्तक थयेला नास्तिकवादीए छहननी शाब्दोनी श्रद्धायी ब्रह्म थयेलो परलोक
भय दूर करावाने अनेक परिश्रमयी निरफल थयो त्यारे प्रत्यक्ष ब्रह्मान्तरी शाब्दो जटां है पर्वे विश्वास उपजा-
ववानेते राजे छहन सद्वित नगरना दरबाजा बहार जह बहु धूलधाडा गारीमां पोतानां आंगलों पाड़चां, ग्रामात्मां ज-
ता आवाता लोकोप अनुमानथी बात केलावी के आजे तो नगर बहार बहु आवेली हतो तेनां पगलां पड़चां है,
आ केलाती प्रसिद्धि नास्तिक वादीए पोतानी छहनने कही ते समजाचर्चु के जेम लोको मारां आंगलाने ब-
हुनां पगलां कहे हैं, तेम शाब्दकर्तायो देख्या विनाज तरक स्वर्ग विग्रे परलोकनी कलपना करे हैं, इथादि
रीते समजावी छहनने विषयवासनामां आसक्त करी.

तपांसि यातनाशिव्राः संयमो भोगचंचनाः । अर्जिनहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लभ्यते ॥ ३४ ॥

अनेकवादीओ आ प्रमाणे कहे हैं—

कारणानि विभित्वाति, कार्याणि च यतः पृथक् । तस्मान्निष्वापि कोलेहु, नैव कर्माऽस्ति निश्चयः ॥ ३५ ॥

अथः—तप करवा ए तो विचित्र प्रकारनां कहु है, संयम ए तो विषय भोगथी द्वावृं है, अने अनिनहोत्रादि क्रियाओ करवी ए वाल्क क्रीडा सरखुं वयर्थ है, ॥ ३५ ॥ वक्ती अनेकवादीओ कहे हैं के—जे कारणी कारणो जूदा है, अने कायों पण जूदा है, माट त्रणे काल्घां कर्म छेज नहिं ए निश्चय है, अहि कर्मज जो एक कारणलप होय तो तेनाथी थयेहां काय पण सरखां होयां जोइए परन्तु तेम देखावृं नयी माटे कर्म छेज नहिं ॥ ३५ ॥

इति कर्मतत्त्वम् (लोकात्मकर्मतत्त्वेषु पूर्वपद्धतिः समाप्तः)

अथ सतपदे (जैनमते) लोकादितत्व निषयः ॥
 (आयाहितानि)

तवामेवानिज्ञीतमसदायां
 साहित्यादिनामिष्टम् । एतत्रुक्तिविरुद्धं
 पूर्वस्मात्कारणात् सतो नास्ति । असतो नास्ति कर्ता,
 सदसद्यां संभवाभावात् ॥२॥

अर्थ—ए प्रमाणे पूर्वे कहेले जे सष्ठिवादिओंतु इष्ट-मन्तव्य जाण्या विनादु अने विषय (पूर्वापर विरोध-वादुं) है, हवे जे रीते ए मन्तव्य युक्तिविनादुं ते रीते कहीय अथवि ए मन्तव्य युक्तिविनादुं केवी रीते है ? ते कहीय ॥ २ ॥ जो आ जगतनी उत्पत्ति मानवी होय तो ते उत्पत्ति सत् के असदमांयी मानवी जोइप, त्यां सद् ने असद् ए वे कारणमांदुं पूर्व-प्रथम कारण जे सद् तेमांयी तो जगतनी उत्पत्ति होय नहि (कारण के जे सद् होय ते तो ब्रण काळ्यां एक सरखी स्थितिवालु होय तो पछी ए सदनु स्वरूप पलटाइने जगतरूपे के म बनी शके ?) अने जो असदमांयी जगतनी उत्पत्ति मानता हो तो तेम पण नयी कारणके असदमांयी (जे ब्रण काळ्यां न होइ शके तेमांयी) तो जगतनी उत्पत्ति करनार कोइ न होय माटे जगतनी उत्पत्ति नयी सदमांयी के नयी असदमांयी, कारणके सद् के असद् ए बनेमांयी कोइप वस्तुनी उत्पत्तिनो संभवज नयी माटे ॥ ३ ॥

इदसत्तसयोत्पत्ति,-खिल्पि कालेषु निश्चितं नाहित । खरच्युंगमुदाहरणं, तस्मात्सवाभाविको लोकः ॥३॥
मूर्तीमूर्ते द्रव्यं, सर्वं न विनाशमेति नान्पत्त्वम् । यदेत्येतत्प्रायः; पर्याय विनाशित जैनानाम् ॥४॥

अर्थः—पूर्व गाथामां “असतो नाहित कर्ता न होय” एष कथुं ते इह करवा मार्ट कहे क्षेत्रे के—जे असत् छे तेनी उत्पत्ति तो निश्चय कर्णे काळमां न नशी, अहि गद्भना शिंगडाहु दण्ड-नत विचारहुं ते आ प्रमाणे—पूर्वकाळमां गद्भने शींगाहा नहोतां, वर्तमान काळमां नशी, अने भविष्यमां यवाना प-गद्भ शींगाहांनी जेम उत्पत्ति न होय तेम असत्—कर्णे काळमां अविद्यमान नशी, जो ए कर्णे काळमां अविद्यमान हे तो गद्भना शिंगाहांनी उत्पत्ति केम होय? अर्थात् कर्णे काळमां अविद्यमान जगतनी उत्पत्ति पण न होय, ते कारण-शी जगतो स्वभावयीज (त्रिकालवर्ती) हे, ॥३॥ ए प्रमाणे जगत् सत् छे पण कर्ता नशी तो पदार्थोनी उत्पत्ति अने विनाश जेम प्रयत्न हेवाय हे तेम जगतनी उत्पत्ति अने विनाश पण केम न संभवे? आ शेकाहु निराकरण करे क्षेत्रे के—जगतमां रुपी अथवा अरुपी कोइ मूल द्रव्य—मूल पदार्थ सर्वथा विनाश पापतो नशी अर्थात् गतपांशी ते द्रव्ययो अभाव यह जतो नशी, तेष ते मूल द्रव्य आहुं पलटाइने अन्यद्रव्य रुपे (जीव मुद्रगल रुपे याय के मुद्रल जीवरुपे) याय एष पण बनतुं नशी माटे जेम मूल पदार्थोनो सर्वथा विनाश के अन्यपदार्थ रुपे उत्पत्ति नशी तेम जगतनो पण विनाश जे जाणवामां आवे हे ते प्रायः

परले असुक अंसे अथवा अमुक अपेक्षाय जाणवा, कारण के जैनोना सिद्धान्तमां द्रव्य-वस्तु द्रव्ययी अविनाशी अने पर्यायी तो विनाशवंत हे कारण के—

जैन दशावस्थां द्रव्य-गुण-अने पर्याय ए त्रणमां सूक्ष्मदार्थ के ले ब्रह्मकालमां अविनाशी अने गुणोने रहेवासां आ-

श्य भूत होय हे ते द्रव्य, ते मूळ पदार्थो जे सदाकाल पदार्थां रहेवावालो स्वभाव ते गुण, अने जे क्षणमां आवे अने क्षणमां जाय पर्वो स्वभाव ते पर्याय कहेवाय हे. जैस जीव ए पोते द्रव्य हे, कारणके जीवत्व कोइपण काले जवानु नथी तेपज ज्ञानादि गुणोनु आश्रय स्थान हे. ए जीवना ज्ञान दर्शन चाहिच इत्यादि गुणो कहेवाय कारण के ए ज्ञानादि जीवद्रव्यमां सदाकाल वर्तनारा होय हे, अने देवत्व नारकत्व इत्यादि पर्याय कहेवाय. अथवा ज्ञानादि द्रव्य आश्रय जे ऊदा जुदा विरोध भेद ते पण वारंवार पलटातो होवायी पर्याय कहेवाय. एमां जीव द्रव्य (मुख्य-स्वरूपे अस्ती) अविनाशी हे, ते अन्य पदार्थ अर्जीवरूपे पण न बदलाय, परन्तु जीव पण कायम रही हेयगेहे ज्ञान गुणवडे वारंवार पलटातो होवायी पटले घटजानी यहते पटजानी थाय वली क्षणमां वृक्षजानी थाय क्षणमां जल-

ज्ञानी थाय क्षणमां स्वर्णजानी थाय इत्यादि रहते जीव (जीवपणे कायम रहेवा उतां पण) पर्यायनी अपे-क्षाए विनाशी कहेवाय. अथवा देव मटी नारक थाय नारक मटी तिर्यच थाय इत्यादि रहते पण जीव (पर्यायनी अपे-क्षाए) विनाशी कहेवाय. अहि द्रव्य द्रव्यत्वनी अपेक्षाए अविनाशी हे माटे द्रव्यते पर्यायनी अपेक्षाए प्रायः (पटले सर्वया नहिं) विनाशी कहु हे, सर्वया विनाशी तो अभावहरूमे याय त्यारेज कहेवाय,

कोदयपदक्षादीमां, यदभिप्रायेण जायते लोकः । लोकाभावं नेधा, मरितवं संसिथं कुञ्च ? ॥ ६ ॥
 सर्वं धरामवराश्यं, याति विनाशं यदा तदा लोकः । किं भवति तु द्विरन्वयत्—माहितं तस्य किं रूपम् ॥ ६ ॥
 यदमूर्त्ति वा, स्वलक्षणं विद्यते स्वलक्षणतः । तस्यत्तमादेशः ॥ ७ ॥

अर्थः—जेअोना पहे आ जगत काशयप अने दक्ष विगेर्हं बनेलु छे, तेओना मत प्रमाणे विचारीए तो जगत उयारे हुंज नहि त्यारे तेओरुं अस्तित्व कमे ठेकाणे हुं ? अर्थात् काशयप अने दक्ष क्यां रहेता हता ? तात्पर्य ए छे के काशयप अने दक्षयी जगतनी उत्पत्ति मानवी अनुचित हुं ॥ ६ ॥ हवे सांख्य जे^२ अव्यक्ती (प्रकृतिथी) जगतनी उत्पत्ति माने छे तेतुं निराकरण करे छे के—पृथनी अने आकाश विगेरे सर्वं जगत विनाश पामे छे, लारे चैतन्यन्यु शुं थाय हुे ? अने ते वरहत अव्यक्तं स्वरूप केवुं प्रतिपादन करेलु हुे ? जो कहो के ते वरहते चैतन्य अने अव्यक्त केवी रीते होय ? तेतुं स्वरूप कंड पण कही शकाय नहि एहुं वचनातीत—वचनातोचर होय के तो ते वात पण अनुकृत हुे तेतुं कारण दशावि हुे, ॥ ६ ॥ जे तीताना लक्षणयी—स्वभावशी । अमृत—अहंपी अथवा मूर्ति—रूपी एवा स्वलक्षणवाङ्गा—स्वभाववाङ्गा पदार्थी विद्यमान हुे ते ज पदार्थी श्री सर्वझोए नयकत (एहुले प्रारं स्वलक्षणवाङ्गा) कहेला हुे, (तात्पर्य आगळ कहेशाय हुे—). ॥ ७ ॥

^२ उओं जगतउत्पत्ति संवनिध पूर्वपदनो गाथा ४२ मी गाथामां कहाँ हो के केदलापक आ जगत कारणक्रमियी अने केदलापक बहुताता पुरव प्रजापतिमांयी उत्पन्न यसेले मानते हों ।
 उओं पूर्णपश्चनी गाथा ४८ मी अने ६८ मी.

द्वयमहत्प्रस्तुपि च, यदिहास्ति हि तत्त्वलक्षणं सर्वम् । लक्षणं न परम् तु, तदन्त्यापुञ्चवद् ग्राणम् ८

अर्थः—अहि द्वय जे रूपी अने अरुपी छे ते (रूपीत्व अने अरुपीत्व ए सर्व) द्वयगुणोत्तम लक्षण छे, तेवै लक्षण जे वस्तुत्व न होय ते वस्तु चेत्या—चांशणीना उत्तरी घेडे अविद्यमान (छे नहि एम) जाणवी, माटे अब्यक्त पण जो जगतनी उत्पत्ति देलां अथवा जगत विनाश पारथा बाद स्वलक्षण रहित (चेतनातीत) हट्ठ एम कहो तो अब्यक्त ए कोइ वस्तुज न होइ शक्ने, अने जो अब्यक्त ए कोइ वस्तुज न होय तो अब्यक्तमांशी जगतनी उत्पत्ति माणवी, अथवा जगत विनाश पारथा बाद केवळ अब्यक्त रहे छे एम मानवै ते कोइ रीते युक्त नक्षी. माटे कहो के जगतना अभाव वावते चेतन्य अने अब्यक्तत्वं स्वरूप केवु होय छे ? जो कहो के अरुपी होय छे ? जो रूपी के न अरुपी एवु होय छे तो ए चेतन्य अने अब्यक्त रूपी के अरुपी रूप स्वलक्षण रहित होवाई ए कन्ते कंडू वस्तु नक्षी तो तेनाशी थती जगतनी उत्पत्ति पण नक्षी ए प्रमाणे सांख्य दर्शनमां जेओ प्रकृतिर्या (पट्टे अब्यक्तथी जगतनी उत्पत्ति माने छे तेओना अभिप्रायात्मक निराकरण कर्यु ।

१। स्वत्यगुण, रजोगुण, अने तमोगुण ए अण गुणनी समावस्था पट्टे लगभग तुल्य होय ते प्रकृति कहेचाहे प्रकृतिनां अब्यक्त अने प्रधान पवां बे पर्याय नाम छे. ते प्रकृतिमांशी जगतनी उत्पत्ति अनन्तर एने नहिं पण परंपराए शब्देली छे, कारण के प्रकृतिशी प्रथम चैतन्य उत्पन्न थयु, ते चेतन्य (भुद्धिमांशी) उत्पत्तिशी इह नो गण उत्पन्न थयो, अने ए १६ मांना जे उपशादि पांच तेमांना एककमांशी एकक भूत (पृथक्षादि तावनी) उत्पत्ति थइ अने ए पांच महाभूतमांशी चृष्टिनी उत्पत्ति थइ ॥

यद्युत्पत्तिं भवति, तुरगविषाणस्य खरविषाणाग्राह। उत्पत्तिरभृतेभ्यो, ध्रुवं तथा नास्ति भूतानाम् ॥९॥
तत्र व्यक्तमलिङ्गा—दृश्यकाङ्क्षित्वा चिष्ठित कदाचित्। सोमादीनां ततुसंभवोऽस्ति यदि नास्ति भूतानि ॥१०॥

अ॒थ—बळी अव्यक्तमांथी चैतन्य अने चैतन्यमांथी उत्पत्ति येला स्पशादि १६ माना पांचमांथी जे पांच म-
हाभूतोनी उत्पत्ति मानी ते पण अयुक्त छे, कारणके जो शर्दभना दिंगडानी अणिमांथी घोडाना दिंगडानी उत्पत्ति
माथी थती एट्ले जो असतमांथी असतनी उत्पत्ति न होय तो (पूर्व श्लोकमां वंध्यापुन्न तुल्य सावित करेला असत-
मांथी अथवा चैतन्यमांथो) भूतोनी (पृथ्यादि सतनी) उत्पत्ति तो अवक्षय न होय, अहि तात्पर्य ए छे के जो
अव्यक्त अथवा नीच न उत्पन्न थाय तो आप्रवृक्ष तो निश्चय न ज उत्पन्न थाय इति भ्रावोर्थः ॥११॥ बळी आ भू-
तोनी नींवांथी नीच न उत्पन्न थाय तो आप्रवृक्ष तो निश्चय न यह शके तो परजातीय सतनी (भूतोनी) उत्पत्ति तो संभवेन केमः?
जेम नींवांथी नीच न उत्पन्न थाय तो आप्रवृक्ष तो निश्चय न यह शके तो परजातीय सतनी (भूतोनी) उत्पत्ति तो संभवेन केमः?
तोनी उत्पत्तिना संवधामां एम पण कहेवाउ छे के लिंग (उपलक्ष्यमाण कार्य—र्पण) रहित एवा अव्यक्तमांथी व्यक्तता
(पंचभूतादि) उत्पत्त थहुं होय तो सोमादिकना शरीरनी (जीवनां शरीरोनी) उत्पत्ति जो के पंचभूत न होय तो
पण होइ शके. अथात् अव्यक्तमांथी (अनुक्तमे चतन्य अने तेमांथी स्पष्टीदि अने तेमांथी)
उत्पत्त पूर्वां पंचभूत जो उत्पत्त थहुं होय तो अव्यक्तमांथी परथार्या व्यक्तत पर्वा जीव शरीरो केम उत्प-
त्त न थाय ? के जेथी पंचभूत उत्पत्त थगा ताद पंचभूतमांथी ज शरीरोत्पत्ति मानवी पडे ?

असति महामृतगणे, तेषामेव ततु संभवो नास्ति । पशुपतिदिनपतिवत्, सोमांडलिपितामहरणाम् ॥१३॥

द्वाद्विमनोभ्यदानां, देहापोहामावस्तदभावे सभवाभावः ॥ १२ ॥

अर्थः—पूर्वश्लोकमां कहा प्रमाणे एव महाभृतानो समुदाय न होय तो * पशुपति (महादेव) दिनपति (सूर्य)नी पठे ते सोम अंड ब्रह्मा अने विष्णुना शरीरनो पण संभव न होय ॥ १२ ॥ अने शरीरने अभावे बुद्धिना भेद अने मनना भेद (जूदी जूदी बुद्धि अने जुहा जुहा विचारवाला पन) नो पण संभव न होय, अने बुद्धि तथा मनना अभावे इहापोह (विचारणा) पण न होय अने जो आ करवा योग्य ले माटे कर्त्तव्यादिविचारणा पण न होय तो वस्तुनी उत्पत्तिनो पण अभाव थाय, कारणके कोइ वस्तु उत्पन्न करवा माटे प्रथम आ उत्पन्न करवा योग्य ले के नहिं एवो इहापोह (—तर्क वितर्क रूप ज्ञान) अपर्य होय ॥ १२ ॥

* महाभृत गण पटले महादेवनो भूतादिगण ल्यां न होय त्यां महादेवतुं शरीर पटले महादेव न होय, अते महामृतगण पटले जीवादिगण नहि होते प्रलयकालमां तेजो प्रकाशक सूर्य पण न होय तेम प्रलयादि तत्त्वरूप महामृतगण न होय तो सोमादिकरां शरीरनो संभव पण न होय परम एक नेयाचिक पासे पूछवाथी समजाय उत्तर ? नेयाचिको कहे छे के ज्ञान-चिकिर्ण (करवानी इच्छा)—अने प्रयत्न (अर्थात् जानाति इच्छिति अनेयतते) प चण्ठी वस्तुनी उत्पत्ति छे, त्यां शरीराभावे बुद्धि अने मननो अभाव होयाथी इहापोह रूप ज्ञाननो (जानाति तो) अभाव आ झोकमां स्तिर्क कयोः ।

तदभावेऽप्तिं न चिन्ता, चिन्ताभावे क्रियाशुणो नाप्ति । कर्तृत्वमनुपाद्यं, क्रियाशुणात्मसंभवतः ॥१३॥
तेन कृतं यदि च जगत्, स कृतः केनाकृतोऽप्यद्युद्धिर्वः । विज्ञेयः सत्येवं, भ्रवपंचोऽपि तद्वदिह ॥१४॥

अर्थः—ए प्रमाणे वस्तु उत्पत्तिस्तो अभाव होते छहते ते वस्तु उत्पत्त वर्तवानी चिन्ता—इच्छा पण न होय कारण के जो उत्पत्तिज न होय तो ते वस्तुने उत्पत्त वर्तवानो विचार पण केम होय ? अथवा वीजो अर्थ विचारता “ तदभावे ” एठले बुद्धि अने मनोभेदना अभावे इच्छा न होय, कारणके इच्छा बुद्धि अने मनना संयोगे उत्पत्त ग्राव ले, ए प्रमाणे वन्ने शीते चिन्ता—‘इच्छानो अभाव यथां क्रियाशुण पुढले ते वस्तुनी उत्पत्तिमां प्रयत्न करवो तेपण न होय, अने क्रियाशुणना (‘प्रयत्नना) अभावे कर्ता पुण पण सिद्ध न थयुं, माटे ड्यां कर्तानीज सिद्ध नशी त्यां जगतनो कर्ता इश्वरादिके जगत बनाव्यु, तो ते इश्वरादिकने कोणे बनाव्यो ? जो कहो के इश्वरादिकने कोइए बनाव्यो नशी तो एम कहेवार्मा तमाह अझान छे, कारणके कर्ता विना जो जगत न वनी शके तो कर्ता विना इश्वर केम वने ? जो कहो के इश्वर तो कर्ता विना पण होइ शके तो ए प्रमाणे होते छहते अहि आ संसारनो प्रथं पण तेवोज (कर्ता विनानो ज) जाणवो.

१-२ आ अलोकमां इच्छातो (इच्छाति नो) अने प्रयत्ननो (यत्तेनो) पण अभाव करी उत्पत्तिनो अभाव सिद्ध कर्या,

अःयुपगच्छेदानीं जगतः स्फटिंवदामहे नास्ति । पुरुषायैः कृतकृत्यो, न करोत्यासो जगत् कल्पम् ॥१५॥
अपकारः प्रताद्यैः, कस्तस्य कृतः सुरादिभिः किंवा । संयोजिता यदते, सुखुः साम्यामहतुःयाम् ॥१६॥
तुल्यं सति सामध्ये, किं न कृतो यहुःखो, जन्मजाताश्चयुपथि लोकः ॥१७॥

अथ—ए प्रमाणे (? यी १४ सुधीना श्लोकमां कथा प्रमाणे जगतनी उत्पत्ति कोइ पण पदार्थमांशी नयी
यह एम) अग्रीकार करनीने—सिद्ध करनी वहे आमे एम कहीए छीए के जगतनी उत्पत्ति कोइमायी नयी एट्टलुज नहि
पण आ जगतनी रचना पण (एट्टले इधरे बनाव्यु एम पण)नयी, कारण के पुरुषार्थो वडे (करवा योग्य छुत्योवडे)
कृतार्थ थयेल एवा आत—सर्वज्ञ आवा यक्किन जगतने न बनावे ॥ १५ ॥ वली प्रेत विग्रेष (भूतादिकोए) ते जग-
तकर्तानीं शु अपराध कर्मो ढे के जेथी तेओने उत्तरता दरजनाना बनावी विना कारणे पाताळमां राखी दुःखमा
जोड्या, अने देवादिके (सूर्यादि विमानवासीभोए) तेनो शु उपकार (अहि “ किं ” एट्टले “ शु ” उपकार
अर्थ करवो) कर्मो ढे के जेथी तेओने उत्तम बनावी स्वर्गलोकमां राखी विना कारणे उत्तमां जोड्या ॥ १६ ॥
जो कर्त्तुं सामध्य सर्वते बनावार्थां एक सरखु हहुं तो सर्व लोकने धनवान केम न कर्या ? के जेथी करीने जन्म
जरा अने मृत्युना मार्गां लोकने अति दुःखवाला कर्या ।

ददि तेन कुतो लोकों, अयोधि किम्भ्य संक्षयः क्रिपते । उत्पादितः किमर्य, यदि संक्षेपणीय एवासी ॥१८॥
कः संशिष्टेन शुणः, को वा एष्टेन तस्य लोकेन । को वा जन्मादिकृतं, हुःखं संप्रापितैः सत्त्वैः ॥ १९ ॥
भूतात्मतयारीरः, कुम्भार्यं कुम्भकृथ्या कुत्वा । असकृद्विनिति तद्वत्, कर्ता भूतानि नित्यं शाः ॥ २० ॥
मवसंभवदुःखकरं, निःकारणविरिणं सदा जगतः । कस्तं वज्रे चक्रणं, स्थृतिः अयोर्थमतिपापम् ॥ २१ ॥

अर्थः—जो आ जगत् ते इन्हें कर्युः होय तो फरीथी आ जगतनो संहार शामाटे करे क्ये ? कारणके आ
जगत जो संहारवा योन्य ज रहुं तो प्रथमधी उत्पन्न ज शामाटे कर्युः ? ॥१८॥ अथवा जगत्तु संहरण करवामा अन्ते
वनवावामां इश्वरने शुः गुण-फायदो शाय हैं ? अथवा जन्म जरा अने मरणना दुःख पत्ते प्राहिला प्राणीओं बड़े
श्वरने शुः गुण शाय हैं ! (अयाति प्राणीओं जन्मादिकर्ता दुःख आपवामां इश्वरने शुः लाभ शाय हैं ?) ॥ १९ ॥
पञ्चश्रुतवडे व्याप्त यथेला शरीरवालों कुंभार जेम वारंवार घट विग्रेरे करीने भागी नांसि छे तेनी पेटे प्राणीओंनो च-
नावन्नार ए इश्वर पण वारंवार प्राणीओंने बनावी संहार करे तो ते निर्देय कहेवाय ॥ २० ॥ भवत्रषणी उपजता
दुःखने उत्पन्न करनार अने हैमेशां जगतना निकारण वेरी एवा ते इश्वरना शरणे कोण जाय ! लेम एवा कोण आ-
चार्य पोताना कल्याण माटे अतिपापीने जरणे जाय ! (तेम निकारण वेरी एवा इश्वरने शरणे कोण जाय) ॥ २१ ॥

स्वकृते जगत्क्षयताः, तरय न बंधोऽस्ति उचिरन्येषाम् । किं न भवति प्रवधे, वन्यः पितुरुप्य चित्तस्य २२
जगतः प्राणुपत्ति—येदि कर्तुर्विग्रहात्कथं तद्दत् । अधुना न भवति तस्येवः विग्रहात्संभवस्तस्य ॥ २३ ॥

ग्रंथकार जगत उत्पत्तिनी चरन्ती इपंसहार करी निर्णय दर्शयति ।—
चिदिधामुष्ठा योनिषु, सम्वानां साम्यात् समुत्पत्तिः । नित्यं तथैव सिद्धिः; प्राहुलौकिष्यतिविधिः ॥ २४

अथः—केटलाएकनी बुद्धि एवा प्रकारनी है (अर्थात् योजा एम कहे हैं के)—प्राताना चनाखेला जगतनो
पोते ज विनाश करनार होय तो तेन वंश—दोष न होय, तो असे एम पूछीए छोए के पोतेज उत्पत्ति करेला उत्तनो
वय करवामां उग्र-क्रूर चित्तबाला पिताने शुदोष न होय ? अर्थात् जो उत्तवय करतार पिता दोषीत गणाय तो
जगत् संहारक ईश्वर पण दोषीत ज गणाय ॥ २२ ॥ वक्ती करताना—ईश्वरना शरीरपांथी जेम पूर्वे जगतनी उत्पत्ति य-
हृ तो तेषी रीते ते ईश्वरना शरीरपांथी तेनी—जगतनी उत्पत्ति हमणां पण केम थती नथी ? ॥ २३ ॥ माटे उपर
कहा प्रमाणे सर्व विचारतां अतिम तात्पर्य एज आवे है के—जेम चर्तमान काळ्वां जूदो जूदी योनीओमां जूदा जूदा जी
वोनी उत्पत्ति है तेवीज उत्पत्ति निरन्तर (भूत-भवित्यामां) पण है, एम जगतस्थितिनी विधि जाणनारा आप्त-
पुरुणो कहे हैं ॥ २४ ॥

एवं विचार्यमाणाः सुष्टिविशेषाः परस्परविरुद्धाः । हरिहरविचारतुःया, युक्तिविहीनाः परित्यज्याः २५
 मुक्तो वाऽमुक्तो वा-इस्ति तत्र मूर्तोऽथवा जगत्कर्ता ।

सदसदापि करोति हि, न युज्यते सर्वथा करणम् ॥ २६ ॥

अर्थः—ए प्राणे विचार करतां जगतनी उपतिष्ठा जूदा जूदा मतभेद प्रथम दशविला विष्णु अन्ते महादेवमां देवन्वना मतभेद युज्व परस्पर विरुद्ध अने युक्तिरहित हे माटे त्याग करना योग्य न्हे. अर्थात् पहेला मकरणमां जैष विष्णु अने महादेवमां देवपणाना मतभेद परस्पर विरुद्ध अने युक्तिरहित दशविला तेम आ जगतनी उपतिष्ठा मतभेद पण तेवज जाणवा ॥ २५ ॥ माटे जगतनो बनावनार शुक्रत होय के असुक्त होय रुपी होय, के अरुपी होय, अने विष्णुमान जगत बनावे के अविष्यपान बनावे पण सर्वथा जगतनु बन बनापाणु ज (अने उपलक्षणीयी बनवा पाणु पण) यट्टु नयी तो पछी जगतनो बनावनार मुक्त हे के असुक्त इत्यादि विचार्यी शु ! ॥ २६ ॥

मुक्तो न करोति जगत् कर्मणा बध्यते हि जीतरागः । रागादियुतः सत्तु-निवृद्धयते कर्मणाऽवद्यम् २७
ज्ञानचित्रादिगुणः, संसिक्षा: शाश्वताः शिवाः सिद्धौ । तत्करणकर्मरहिता, वहवस्तेषां प्रभुनार्दित २८॥

अर्थः—इश्वर तो जे मुक्त (सर्व कर्मरहित) होय तेज कहेवाय, अने जे मुक्त होय ते जगतने बनावे न-
हि. आ सिद्धान्त सांभळने कोइ कहे के जो सर्व होय तेज जगत बनावे तो इश्वर पण पथम सर्कम् थइने पछी
जगत उत्पत्ति करी एम मानवामां शुं विरोय छे ? त्यारे ग्रन्थकार कहे छे के इश्वर तो वीतराग (सर्वेषा राग
रहित) होय अने जे वीतराग होय ते कर्मबदे बंधाय नहि परन्तु जे राग द्वेष आदि सहित अने शरीरशारी जीव होय
तेज अवश्य कर्मबदे बंधाय छे तो पछी इश्वर सर्कम् थइने जगत बनावे ए केम संभवे ! ॥ २७ ॥ हवे इश्वर कोण
कहेवाय ? ते ग्रन्थकार दशावि छे के--जे जीवो ज्ञान अने चारित्र विग्रे आत्मगुणोबदे सर्वयक् प्रकारे सिद्ध थयेला हो-
य (एटले ज्ञानादि आत्मगुणोने संपूर्ण प्राज्ञ कर्मा होय), तथा सिद्धस्थानमां सदाकाळ (अनंतकाळ) अने
उपद्रव रहित पणे रहेला होय, तथा शरीर इन्द्रिय अने कर्म ए ब्रणे रहित होय ते इश्वर कहेवाय, एवा इश्वरो--सिद्धो
घणा छे (आयी इश्वर एकज छे ए मन्त्रव्य पण असत्य जणाव्यु). अने ते सिद्धोमां कोइ म्होटो (मोटो नानो)
नथी, परन्तु सर्वे सिद्धोना करतां बीजो कोइ म्होटो नथी के जेने सर्वोपरि इश्वर तरीके
स्वीकारीए, म्होटामां मोद्य आत्मा तो ए सर्व सिद्धोज छे, तो पछी जगतनो कर्ता इश्वर एकज छे ते कयो? ॥ २८ ॥

2 अहं छेदोभंग थाय छे. ‘हि वीतरागः’ ते बदले विगतरागः होय अथवा हि गतरागः होय तो छेदोभंग न थाय

कर्मजनितं प्रभुत्वं; संसारे क्लेच्छतश्च तद्विद्वनम् । प्रभुरेकस्ततुरहितः; कर्त्ता च न विद्यते लोके ॥ २५ ॥

अर्थः—हवे पूर्वगायामां करुं के सिद्धोमां कोइ एक प्रभु (म्होटो) नथी, अथवा सिद्धोनो कोइ (प्रभु उ-
परी—स्वामी) नथी तेउं कारण आ श्वोकमां दश्यति ले के प्रभुपणुं (म्होटा नानापणुं) तो कर्मधी उत्पन्न थयेउं
अने ते संसारमां होय छे पण कर्म रहित सिद्धोमां एक म्होटो अने एक नहानो होवामां शुं कारण छे ? वली ते
प्रभुत्व (संसारीपणामानु कर्मजन्य प्रभुत्व) केवरी जुदु जुदु होय छे, पटले राजानु तेना देवा जेटलु, वासुदेवतुं विन-
खंड जेटलु, चक्रवर्तीनुं द खंड जेटलु, देवतन्द्रनु ते देवलोकादि जेटलु ए प्रमाणे अनेक प्रकारारुं छे, आ सर्वं प्रभुत्व सां-
सारिक अने कर्मजन्य छे, भाटे आ लोकमां-संसारमां शरीर रहित एवो एक प्रभु-ईश्वर अने ते जगत्तनो पण
बनावनार होय ते विद्यमान नथी, कहेवानु तात्पर्य ए छे के सिद्धमां तो कोइ जगत्कर्ता एक प्रभु संमवतो नथी,
अने संसारमां जोहए तो तेमां पण क्षेत्रादिभेदे अनेक प्रभु कर्मजनित होवाथी शरीर रहित एक प्रभु जगत्कर्ता ज-
णातो नथी, जेथी जगत्कर्ता प्रभु नथी बुकिमां के नथी संसारमां, माटे जगत्कर्ता ज नथी ॥ २५ ॥

अवगाह। कृतिरूपः, *स्थैर्यभावेन शाश्वते लोके । कृतकर्त्तव्यमनिष्टयत्वं, मेचदीनां न संभवति ॥ ३० ॥
गुणवृद्धिहानिचित्रा, कैश्चित् मही हृता न लोकश्च । इति सर्वमिदं प्राकुः, विज्ञपि लोकेषु सर्वविदः ॥ ३१ ॥

अर्थ—शाश्वते (विकाळचर्ता) एवा आ लोकमां अवगाह (उंचाइ जाडाइ लंबाइ ने छोड़ाइ), आकार, अने-
रूपवहे स्थिर होवाथी एटले अवगाहादिक ब्रणे काळमां एक सरला होवाथी ऐरपर्वत विग्रेनी उत्पत्ति के विनाश संभ-
वतो नथी. अथवा वीजी रीते आ ल्होकनों अर्थ आ प्रमाणे—अवगाह आकृति ने रूपवहे स्थिर होवाथी शाश्वत एवा
आ लोकमां ऐरपर्वत विग्रेनी उत्पत्ति के विनाश संभवतो नथी, माटे मेरु विग्रेनो अथवा जगत्तनो कर्ता मानवो-
योग्य नथी ॥ ३० ॥ वली^१ छ गुणवृद्धिय अने छ गुणहानि वहे विचित्र एवी आ पृथकी अने लोक कोइए ब-
नावेल नथी, ए प्रमाणे ब्रणे लोकमां आ हृष्य के अहर्य सर्वे पदार्थों छ गुणवृद्धिय अने छ गुणहानि वहे विचित्र ने-
अने कोइए बनाव्या नथी एम सर्वदो कहे छे ॥ ३१ ॥

^१ *छंदोभंग थयाथी स्थिर स्थामोवेन संभवे. छ गुणवृद्धिय पटले जैन दर्शनमां मानेली अनंतभागवृद्धि-असंख्यभाग-
वृद्धिय-संख्यभागवृद्धिय-संख्यगुणवृद्धिय-असंख्यगुणवृद्धिय-अनन्तगुणवृद्धिय-अने अनन्तगुणवृद्धिय. प्र असाणे द गुणहानि पण जाणवी.

अङ्गाच्छक्षमनीयं, उद्योगिश्चकं च जीवचकं च । नित्यं पुर्वंति लोका—तुभावकमानुभावाख्याम् ॥ ३२ ॥
चन्द्रादित्यसञ्चुदा—स्त्रिच्छपि लोकेषु नातिवर्त्सन्ते । प्रकृतिप्रसाणमात्मा—यमित्युचाचोत्थमज्ञानम् ॥ ३३ ॥

सचोः पृथिव्यश्च सञ्चुदशैला; संस्कर्णितिक्षालयमन्तरीक्षम् ।

अकृतिभ्यः शाश्वत दृष्ट लोकः, अतो वहिर्घटनदलौकिकं तु ॥ ३४ ॥ उपजातिवृत्तम् ॥

अर्थः—वल्ली कोइपण नेता विनारुं आ काळचक ड्योतिश्चक अने जीवचक (चक्र—मेद—समुदाय) लोकस्वभाव (बुद्धरत) अने कर्म ए बेना प्रभावशी हमेशा जगतने पवित्र करे हैं, अर्थात् ए ज्ञाने जगतमां प्रवर्ते हैं, ॥ ३२ ॥ आ त्रै लोकमां चन्द्र सूर्य अने समुद्र इत्यादि पोत पोतानी मध्योदाहुं उलंघन करता नयी, ए स्वाभाविक अनतिवर्तनज आ आत्मा स्वभावसिद्ध है एवा प्रकारना उत्तम ज्ञानने जपावे हैं ॥ ३३ ॥ सर्वे(साते)पृथ्वीओ, सर्वे (असंख्य समुद्रो) अने सर्वे (अनेक) पर्वतो तथा स्वर्गलोक, सिद्धिरथान (ईपत्र प्राग्भारा पृथ्वी—सिद्धशिला), अने आकाश (लोकाकाश) ए सर्व मलीने "लोक" कहेवाय हैं, अने ते लोक कोइनो बनावेलो नहि एवो अने शाश्वत (त्रिकालवर्ती) हैं, ए लोकथी बहार जे कंड (केवल आकाश इन्द्र्य) हैं, ते " अलोक " कहेवाय हैं ॥ ३४ ॥

संक्षेपयी कर्मतत्त्व करे ।—
प्रकृतिशब्दी विधानं, कालः प्रकृतिविधिश्च देवं च । इति नामशनो लोकः, स्वकर्मितः संसरत्यवदा: ॥ ३६ ॥
कर्मचुभावनिर्भित-नैकाकृतिजीवजातिगहनस्य । लोकस्यास्य न पर्यव-सानं त्वैवादिभावश्च ॥ ३७ ॥

अर्थः—हवे कर्मगु स्वरूप अति संक्षेपमां करे ।—प्रकृति, ईश्वर, विधान, काल, सुष्ठि, विधि, अने द्वय एवा नामवालो आ लोक हे, कारण के प्रोताना कर्मयी परवशा—पराधीन थयो छातो आ लोक (जीवसमुदाय) चारे गतिमा रख्वे हे, तातपर्य ए छे के क ईश्वर विधि ए नामो लोकतां छे एम कहीये तोपण चाले, कारण के अहि लोक पटले जीवसमुद्ध ते प्रोताना कर्मयी उयां परिग्रामण करे ।—ते चार गतिरूप लोकत कहेवाय हे ॥ ३६ ॥ कर्मना प्रभावशी निर्माण थयेलीं अनेक आकृतिवालीं (संक्षेपे ८४००००० चोरासोलाख अने विस्तारथी 'असंख्य') जीवोने उपजवानां स्थानों वडे अथका (जाति पटले जन्म अर्थ होवायी) अनेक आकारचाला जीवोना जन्म रहे, अथवा (जा तिने भेदवाचक गणतां) अनेक आकारवाला जीवनी जातिओ पटले जीवभेदोवहे गहन (अतिशय भरेला) एवा आ लोकतो अन्त नयी (पटले आ लोकतो कोइपण काले अभाव थवानो नयी) तेस आदि भाववालो पण नयी (पटले अमुक काले वन्यो एम पण नयी) ॥ ३७ ॥

१ पक्ष योनि (उत्पत्तिस्थान) अंगुलता असंख्यातसा भाग जेवडु होय तेयी लोकमां असंख्य घोनिअ होय.

तस्यादनादिनिधंतं व्यसनोरुमीयं, जनशारदोषद्वन्द्वतिराजातुम्बश् ।
घोरं स्वकर्मपवनेहितलोकचक्रं, आम्यत्यनाशतमिदं किञ्चिह्नश्वरेण ॥ ३७ ॥ उपजाति० ॥

अथः—ते कारणथी अनादि अनन्त स्थितिवाङ्कुं कृष्णहे अति भयंकर अने अनेक जन्म रूपी आराओ वाङ्कुं दोप (द्वेष) रूपी मजबूत नेमि (पेंडा उपरनो मोटो लोखंडनो गोल पाटो के जो पैंडाने चारे बाजूथी मजबूत घाँथी राखे छे ते वाळ) वाङ्कुं, अति राग रूप नाभि वाङ्कुं, वोर, अने पोताना करेला कर्म रूपी पवन बढे प्रेरायठुं(चाली रहेहुं) आ लोक(सार) रूपी चक्र निरन्तर परिचमण करे छे, तो अहं इश्वरवडे शुं? अथात् पूर्णोक्त स्वरूप वालो लोक कर्म प्रयोजन चाल्या करे छे, पण कोइ इश्वर रूप अधिपतिनी प्रेरणाथी चाले छे एम नाहि ज ॥ ३७ ॥

इति श्री परमपूर्ण श्रीमद् हंसविजयजीत् प्रसादेन
पं—चंदुलाल कृतं श्रीलोकतत्त्वनिर्णयस्य
॥ गर्जरभाषान्तरं समाप्तम् ॥

॥ श्री लोकतरवनिष्ठि ग्रंथः समाप्तः ॥

१८८८ ब्रह्मग्रामादसुवधार श्रीमद् हरिभद्रसुरीवरविरचित्,

आ गुरुरक्ष की जीन एडवोकेट " श्रीनन्दीग्रंथां शा । श्रीमनलाल और लाल पासे श्रीनन्दी श्रीनन्दी अलटानाद ।

